नयी पौध

नागार्जुन

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

और, यह संस्करण

'नयी पौध' का यह संस्करण कई दृष्टियो से प्रामाणिक माना जायेगा। अन्त के दो अध्यायों में से लगभग दो पृष्ठ जितनी सामग्री निकाल दी गयी है—पहले इसमे इक्कीस अध्याय थे, अब बीस अध्याय हैं।

पाठ्य-क्रम की सीमाओं का ध्यान प्रस्तुत संस्करण में अधिक-से-अधिक रखा गया है, अतः 'नयी पौध' के पिछले संस्करण अब मान्य नहीं रह गये।

पिछले संस्करणों मे प्रूफ की अशुद्धियों का अन्त नही था। वे अब ठीक कर दी गयी हैं।

अति ठेठ आंचलिक शब्दों को हटा लेने का इरादा था, एक भी फुटनोट (पाद-टिप्पणी) रखने की इच्छा नही थी। हिन्दी पढ़नेवाले देश-विदेशव्यापी पाठक-समुदाय के समक्ष पूर्वी हिन्दी की बदलती हुई अभिव्यक्ति पर अपनी तरफ से कुछ आवश्यक सूचनाएँ देनी थी। जल्दी मे यह सब नही हो सका…अगले संस्करण मे होगा।

—नागार्जुन

नयी पौध

जेठ का महीना था।

लगन के दिन थे। अबकी दो साल बाद ये दिन आये थे। इन दिनों का बाट जोहते-जोहते कई बुढ़ियों को उन्निद्र रोग हो गया था। कोई पोते की लड़की के दामाद का मुँह देखकर मरने की बात करती थी तो किसी का मनोरथ नतनी के बेटे की बहू का घूँघट हटाना-भर रह गया था। कोई परपोते का मूँड़न-छेदन देख लेना चाहती थी। किसी की परपोती छिकी पड़ी थी, वह उसका ब्याह देखकर ही इस धरा-धाम से विदा होनेवाली थी। विधवा सहुआइन ने बड़े उत्साह से चभच्चा खुदवाया था, इन्हीं दिनों में वह उसका जग[1] करनेवाली थी...

गरज यह कि लगन के दिनों की इन्तजारी में ढेर के ढेर काम रुके पड़े थे।

पण्डित खोखाइ झा की नतनी काफी खूबसूरत थी। चौदह टपकर[2] पन्द्रहवें में अभी उसने पैर रखा ही था कि यह जेठ का महीना आ धमका। अब उसकी शादी होनेवाली थी। समूचा गाँव चौकन्ना था कि खोखा पण्डित इस परी के लिए कैसा दूल्हा लाते हैं।

खोखा पण्डित पर प्रजापति विधाता की बड़ी दया थी। सात लड़कियों और पाँच लड़कों के 'पूजनीय पिताजी' होने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त था।

पण्डिताइन का कद दिन से दिन नाटा होता गया और 'दैव की इच्छा' ही उसके तमाम दुःख-दर्दों की दवा थी। आँख-मुँह और कान-नाक का नक्शा अच्छा था, सूरत गेहुआँ थी। पण्डित की अपनी कान्ति

१. यज्ञ। २. पार करके।

साँवली थी तो क्या हुआ, बच्चों की शकल-सूरत पर माँ की ही छाप पड़ी थी। पण्डिताइन का शील-स्वभाव भी मीठा था, बोल भी उनके मीठे थे।

जथा-जाल[१] मामूली था। पेशा था पण्डिताई का। जमीन इतनी ही थी कि चार महीने का गुजारा उसकी उपज से निकल आता। विद्या से ही उनकी असल आमदनी थी। भागलपुर, मुंगेर, संथाल-परगना और पूर्णिया—इन चारों जिलों में खोंखा पण्डित का नाम था। आवाज सुरीली और मीठी होने से भागवत की उनकी कथा लोग कान पाथकर[२] व मन लगाकर सुना करते। अब तो खैर सर्धा-विश्वास कम हो गया, पहले मगर भागवत से काफी आमद थी। पुराने ढर्रे की साहखर्ची और पास-पड़ोस के लोगों से यश पाने की भूख—इन दोनों लतों ने खोंखा पण्डित को तबाह कर रखा था। पहली लड़की की शादी अच्छे घर-वर देखकर की थी। सबने उस रिश्ते को पसन्द किया था। हिटलर की लड़ाई छिड़नेवाली थी। चावल रुपये का दस सेर और घी सवा सेर आता था। पूस में साल-भर का खेवा-खर्चा जुटाकर पण्डित घर में भर लेते और खुद निकल जाते जजमनिका[३] में, पूरब या दच्छिन की ओर।

सौराठ[४] में शादी के उम्मीदवारों का जो मेला लगता है, पण्डित अपने बेटे को लेकर वहाँ पहुँच चुके थे। लड़की या लड़के का ब्याह ठीक कराने के लिए गाँव के और लोग भी सौराठ गये थे।

घर में ब्याह की पूरी तैयारी थी। महीन चावल, अरहर की दाल, गेहूँ का आटा, घी, तेल, कई किस्म के अचार, धोतियों के दो जोड़े, दुपट्टा, पगड़ी, घूनस[५], दो साड़ियाँ, सुपारी और चीनी···बिसेसरी की नानी ने तमाम जरूरी चीजें जुटा रखी थीं।

पण्डित ने स्वयं नतनी का नामकरण किया था—विश्वेश्वरी! भूल से भी उनके मुँह से 'बिसेसरी' नहीं निकलता। एक-एक अक्षर मानो प्रयत्नपूर्वक कण्ठ, तालू, होंठ और दांत-जीभ से टकराकर निकलता।

१. धन-सम्पदा, जर-जमीन। २. फैलाकर, बिछाकर। ३. यजमानों, पुरोहिताई। ४. एक स्थान जहाँ ब्याह की बात पक्की होती है। ५. घूंघटदार सेहरा।

लोगों से शब्दों का शुद्ध उच्चारण करवाने का उनका उत्साह अब तो काफी ठण्डा पड़ चुका था, लेकिन पण्डिताइन को वह यदा-कदा फिर भी डांट दिया करते थे—"क्या विसेसरी, विसेसरी करती हो ! तुम्हारे पिता तो वैयाकरण केसरी थे न ? बाप का संस्कार क्या कौड़ी-भर भी तुम्हारे हिस्से में नहीं पड़ा ? हे राम !!"

ऐसे अवसरों पर पण्डिताइन गम खा जाती, बकर-बकर ताकती रह जाती अपने पतिपरमेश्वर के मुँह की ओर। बचारी ने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के सम्बन्ध में अनेकों प्रवचन सुन रखे थे, लेकिन ऐन मौके पर मानो उनकी जीभ फिसल जाती—"विसेसरी !"

आखिर एक दिन यह अफवाह उड़ ही गई कि आज सन्ध्याकाल खोंखा पण्डित सौराठ से दूल्हा ला रहे है…शकल-सूरत तो उसकी ठीक है मगर उमर अधिक है…बहुत बड़ा काश्तकार है…सीतामढ़ी से पच्छिम कहीं उसका घर है…यह पांचवीं बार वह दूल्हा बन रहा है…

गांव के सयानों ने अपने को इस पर 'अगम कुआँ'[1] बना लिया। इस अफवाह पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने से उन्होंने बिल्कुल इन्कार कर दिया। मुँहफट लोग फूटे ढोल की तरह इधर-उधर बोलते फिरे, डोलते फिरे !

औरतों की कानाफूसी पण्डिताइन के लिए दुश्चिन्ता का विषय बन गई। रामेसरी को वह क्या कहकर दिलासा दे, कुछ समझ मे नहीं आ रहा था।

रामेसरी बड़ी लड़की थी और आज तेरह साल से विधवा थी। उसने बड़ी कोशिश की कि ससुराल मे ही जमी रहे, लेकिन जेठानी और देवरानी ने बेचारी के खिलाफ एक अजीब सयुक्त-मोर्चा बना लिया तो भागकर माँ-बाप की छाया मे आ गई थी।

अपने पिता की इधर की गति-विधि से रामेसरी बड़ी शंकित रहती थी। शंकित होने का कारण क्या था ?

कारण यही था कि रामेसरी को छोडकर बाकी छहो बेटियाँ खोंखा

१. परम गम्भीर।

पण्डित ने बेच डाली थीं।

महेसरी से उन्हें ११००) मिले थे।

भुवनेसरी से ८००) मिले थे।

गुनेसरी से ७००) मिले थे।

गुजेसरी से १०००) मिले थे।

बानेसरी से ७००) मिले थे। और—

धनेसरी से ६००) मिले थे। और अब बिसेसरी का नम्बर था। फसल तैयार खड़ी थी, कटने-भर का विलम्ब था!

रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी। सभी बहनें माँ-बाप को सराप दिया करती थीं। कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौड़म के पल्ले। कोई तीन जिला पार फेंक दी गई थी तो कोई पाँच सौ कोस पर। उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गई थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।

अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वहीं अपने बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा ही घृणा थी। कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसकर पिला दे! क्या करेगी जीकर बिसेसरी? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर!! मगर, माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानो चन्दन का लेप चढा जाता। वह सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती। होंठों को आहिस्ते से चूमकर गाल से गाल सटाकर अपनी बेचैनी पर हावी हो जाती। साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाती और फिर निद्रादेवी का दरबार बेचारी को अन्दर दाखिल कर लेता।

रामेसरी ने ममता का मक्खन और स्नेह की सुधा खिला-पिलाकर बिसेसरी को पाला-पोसा था। बड़े ही जतन से उसने लड़की को अपर प्राइमरी[1] तक शिक्षा दिलवाई थी…

१. दर्जा चार तक।

रामेसरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गई, भाभियों की नजर बचाकर। वह कुछ सोचती रही—लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है? बाबू (पिता) को यह हो क्या गया है? दूल्हे को आने दो, उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूं तो रामेसरी मेरा नाम नहीं! एक बुड्ढा मेरी लडकी का सींथ भरेगा, मुंह झुलसा दूंगी मरदुए का!···आवेश की भाफ निकल गई तो उसे अपनी सामर्थ्य का ख्याल आया···मैं कर क्या सकती हूं! चीखूंगी और चिल्लाऊंगी और अपना सर पटकूंगी, पिताजी को असह्य होगा तो मुझे किसी कमरे में बन्द करके बाहर से सांकल चढ़ा देंगे; शादी तो होकर रहेगी···या, माहुर[1] का प्रबन्ध करूं कहीं से और खिला दूं छोकरी को···

बेसुधी में रामेसरी की पलकें झपक आईं।

दो

ज्यादा तो नहीं, पांच ही सात नौजवानों का एक गुट था गांव में। सयाने लोग परिहास मे इस गुट को 'बमपाटी' कहा करते। ऐसा कहलाना वे नवयुवक अपने लिए शान की बात समझते थे।

जवार मे ही हाई स्कूल खुल गया था, मिडिल स्कूल तो खैर पांच कोस के उस इलाके में अब तीन थे। गांव मे अपर प्राइमरी स्कूल था ही, संस्कृत पाठशाला भी थी। पढ़े-लिखे लोग नजदीक और दूर के शहरों में नौकरी कर रहे थे। मॅहगी के इस जमाने मे समूचे परिवार को साथ रखना उन्हें अखरता था। दूसरी बात यह भी थी कि सबके पास दो-दो, चार-चार बीघा खेत थे, घर था, बगीची थी, आम के दो-चार, दस-पांच पेड़ थे, मछलियों के लिए सामूहिक पोखरा था—गांव की पुश्तैनी सम्पदा को छोड़ने के लिए आखिर कौन तैयार है? हां, तीन-चार ऐसे 'बड़े बाबू' भी थे जो अकचाती ससुरालवालों की मेहरबानी से सरकारी नौकरी पा गये थे और अब तरक्की करते-करते सेक्रेटरियट की अंगनई मे दाखिल

[1] विष, जहर।

पण्डित ने बेच डाली थीं।

महेसरी से उन्हें ११००) मिले थे।

भुवनेसरी से ८००) मिले थे।

गुनेसरी से ७००) मिले थे।

गुजेसरी से १०००) मिले थे।

वागेसरी से ७००) मिले थे। और—

धनेसरी से ६००) मिले थे। और अब बिसेसरी का नम्बर था। फसल तैयार खड़ी थी, कटने-भर का विलम्ब था!

रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नही रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी। सभी बहनें माँ-बाप को सराप दिया करती थीं। कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौड़म के पल्ले। कोई तीन जिला पार फेंक दी गई थी तो कोई पाँच सौ कोस पर। उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल मे डाल दिया था। एक पगली हो गई थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।

अपनी बच्ची के सौन्दर्य पर जहाँ उसे अभिमान था, वहीं अपने बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन मे घृणा ही घृणा थी। कई बार वह सोचती कि बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसकर पिला दे! क्या करेगी जीकर बिसेसरी? ऐसी जिन्दगानी से मौत लाख गुना बेहतर!! मगर, माँ का मोह रामेसरी के परिताप पर मानो चन्दन का लेप चढ़ा जाता। वह सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती। होंठों को आहिस्ते से चूमकर गाल से गाल सटाकर अपनी बेचैनी पर हावी हो जाती। साँस अपनी स्वाभाविक गति पर आ जाती और फिर निद्रादेवी का दरबार बेचारी को अन्दर दाखिल कर लेता।

रामेसरी ने ममता का मक्खन और स्नेह की सुधा खिला-पिलाकर बिसेसरी को पाला-पोसा था। बड़े ही जतन से उसने लड़की को अपर प्राइमरी[1] तक शिक्षा दिलवाई थी…

१. दर्जा चार तक।

रामेसरी थोड़ी देर अकेले में जाकर चटाई पर औंधी लेट गई, भाभियों की नजर बचाकर। वह कुछ सोचती रही—लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है? बाबू (पिता) को यह हो क्या गया है? दूल्हे को आने दो, उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूं तो रामेसरी मेरा नाम नही! एक बुड्ढा मेरी लड़की का सीथ भरेगा, मुंह झुलसा दूंगी मरदुए का!···आवेश की भाफ निकल गई तो उसे अपनी सामर्थ्य का ख्याल आया···मैं कर क्या सकती हूँ! चीखूंगी और चिल्लाऊँगी और अपना सर पटकूंगी, पिताजी को असह्य होगा तो मुझे किसी कमरे में बन्द करके बाहर से सांकल चढा देंगे; शादी तो होकर रहेगी···या, माहुर[1] का प्रबन्ध करूं कहीं से और खिला दूं छोकरी को···

बेसुधी में रामेसरी की पलकें झपक आईं।

दो

ज्यादा तो नही, पांच ही सात नौजवानों का एक गुट था गांव में। सयाने लोग परिहास मे इस गुट को 'बमपाटी' कहा करते। ऐसा कहलाना वे नवयुवक अपने लिए शान की बात समझते थे।

जवार मे ही हाई स्कूल खुल गया था, मिडिल स्कूल तो खैर पांच कोस के उस इलाके में अब तीन थे। गांव मे अपर प्राइमरी स्कूल था ही, संस्कृत पाठशाला भी थी। पढ़े-लिखे लोग नजदीक और दूर के शहरों में नौकरी कर रहे थे। मँहगी के इस जमाने में समूचे परिवार को साथ रखना उन्हें अखरता था। दूसरी बात यह भी थी कि सबके पास दो-दो, चार-चार बीघा खेत थे, घर था, बगीची थी, आम के दो-चार, दस-पांच पेड़ थे, मछलियों के लिए सामूहिक पोखरा था—गांव की पुश्तैनी सम्पदा को छोडने के लिए आखिर कौन तैयार है? हाँ, तीन-चार ऐसे 'बड़े बाबू' भी थे जो अकवाली ससुरालवालो की मेहरबानी से सरकारी नौकरी पा गये थे और अब तरक्की करते-करते सेक्रेटेरियट की अंगनई में दाखिल

१. विष, जहर।

हो बैठे थे। उनकी दुनिया अब इस दुनिया से एकदम अलग हो चुकी थी। गाँववाले उनकी नजरों में अब उजड्ड व गँवार थे। दफ्तर का काम कर चुकने के बाद अधिकाश समय उनका अपने-अपने बँगले की बैठक में आरामकुर्सी पर कटता था। बैठे-बैठे थके-बूढ़े सांड की तरह अधमुँदी आँखों से वे जुगाली किया करते थे—श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, कृष्णवल्लभ सहाय, नेहरू, शेख अब्दुल्ला'''ट्रूमैन और स्टालिन''' डेमोक्रैसी, कम्यूनिज्म, अमेरिका, रूस, चीन'''डी-व्ही-सी[1], कोसी प्रोजेक्ट '''मँहगाई, वेतन-वृद्धि, फैमिली प्लानिंग'''अरविन्द और गोगिया पाशा '''लड़के को अमेरिका भेजवाना है'''दामाद को टाटा मे घुसाना है'''

मगर मामूली नौकरी-पेशावाले लोगों के लिए तो यह सब सम्भव था नहीं, वे तो गाँव की अपनी दुनिया को बिल्कुल छोड नही सकते थे। घर-गिरस्ती की निगरानी के लिए इस श्रेणी के शिक्षित ग्रामीण अपने लडके को घर पर ही छोड़े हुए थे। पास के स्कूल में ये पढ़ते भी और घर के कामों की व्यवस्था मे परिवार की सहायता भी करते। मैट्रिक हो जाने पर इनमे से बहुतेरे मधुबनी या दरभंगा के कालेजों मे आगे की पढाई के लिए भर्ती हो जाते। तो भी अपने घर-गाँव से इनका सम्पर्क टूटने नही पाता।

इन्ही युवकों ने गाँव मे पुस्तकालय की स्थापना की थी। माँग-मूँगकर किताबें इकट्ठी की गई थी, दो-तीन अखबार भी आने लगे थे। शाम को गाँव के बाहर मैदान में गेंद और कबड्डी खेलते जाकर।

समय की धारा से वे अपरिचित नही थे। बड़ों-बूढ़ों की कठोर से कठोर नुक्ताचीनी उनसे सुनी जा सकती थी। गाँव का मुखिया चीनी और मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर और सो भी समय पर कम ही लोगों को देता था। अपने मकान के सामने उसने बीस गज लम्बी बाँस गाड रक्खी थी, जिसके छोर पर तिरंगा फहरा रहा था। कपड़े की परमिट में भी साझेदारी मारवाड़ी से साँठ-गाँठ करके मुखिया काफी कमा चुका था।

[1] दामोदर वैली कारपोरेशन।

पिछले साल 'बमपाटी' वालों ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के पास दरखास्त दी—"हमारे गाँव का मुखिया चीनी और किरासिन के बँटवारे में धांधली करता है, इस गड़बड़ी को फौरन दुरुस्त किया जाय।"

सप्लाई-इन्सपेक्टर आकर गवाही ले गया। दरखास्त पर नौ आदमियों के हस्ताक्षर थे। मुखिया के आतंक से इन्स्पेक्टर के सामने पाँच जने ही आये। उन पाँचों के नाम पर अलग-अलग कार्ड बना दिया, बस !

और तब से समूचे गाँव पर 'बमपाटी' वालों की धाक जम गई। गरीब-गुरबा बड़ों की आँख बचाकर इन नौजवानो से बात-विचार करने लगे।

इनका अड्डा दालानों पर या बैठकबाजी के लिए निश्चित खुली जगहों मे न जमकर किसी प्राइवेट घर में अथवा गाँव के बाहर किसी बाग मे, किसी बरगद या पीपर-पाकड़ के तले जमा करता।

गुट की गति-विधियो से परिचित दो-तीन बहू-बेटियाँ भी थी गाँव में। एक नौजवान ग्वाला था।

बैठक या अड्डेबाजी के लिए 'एजेंडा' जैसी कोई चीज पहले से तय करके नहीं रखी जाती ! जब जैसा मौका आया वैसी बात उठी और 'ऐक्शन' लेने या न लेने का फैसला ले लिया गया ! यह गुट अपने-आप में दरअसल एक मौजी गिरोह था। खेल-कूद, मनोरंजन, मामूली बात-विचार और छोकड़ों की आपसी शिकायतों को सुलझाने तक ही इसकी गति-विधि सीमित थी। लेकिन पिछले साल एक ऐसी घटना हो गई कि गुट को सयानो के अधिकार-क्षेत्र मे हस्तक्षेप करना पड़ा और, तभी से चन्द किशोरों की यह छोटी-सी जमात 'बमपाटी' जैसे गौरव-पूर्ण नाम से भूषित-भाषित होने लगी। रोष, आवेश, व्यंग और चिढ़ के मारे खोखा पण्डित ने ही इस गुट का ऐसा नामकरण किया था। क्यो ?

क्योंकि पण्डित के स्वार्थ पर गुट ने करारी चोट की थी।

चतुर्भुज भरी जवानी मे इस धरती से उठ गया था। मूर्खता,

गरीबी, दश कट्ठा ऊसर खेत और आठ धूर[1] वासभूमि—विरासत मे बाप-दादो से बेचारे को यही सम्पदा मिली थी। बारह साल की छोटी आयु मे ही लहेरियासराय के किसी होटल मे वह अग्निहोत्री[2] की ट्रेनिंग लेने लग गया था, पीछे एक अच्छे रसोइये के रूप में वही उसका विकास हुआ। दो साल वहाँ और बारह साल मुजफ्फरपुर-पटना के कई एक छोटे-बडे होटलो मे कलछी-चम्मच मांजता रहा था, तब जाकर चार सौ रुपये हुए थे और शादी हो सकी थी।

चतुर्भुज का बाप खोंखा पण्डित का चचेरा था। वह भी कम उमर में मरा था। चतुर्भुज खोंखा पण्डित को फूटी आँखों भी नहीं सुहाता था। पण्डित की मन्शा रही कि परेशान होकर और तंग आकर यह कहीं जाय तो इसकी घराडी[3] पर अपनी दखल जमा लेंगे, उसमे भाँटा-रमभिंडनी[4] उपजायेंगे। मगर चतुर्भुज के जीते जी खोंखा पण्डित का वह मनोरथ पूरा नही हो पाया।

चतुर्भुज का बडा लडका माहे बाप से चार कदम आगे था—समझ-बूझ मे भी और जीवट मे भी। वह हिन्दी मिडिल और सस्कृत प्रथमा पास करके कुछ दिनो तक कानपुर की हवा खा आया था। था तो खूब-सूरत मगर कपार पर बाईं ओर घोड़े के खुर का निशान था, बचपन मे चोट लगी थी। अठारह साल की उमर थी। खोंखा पण्डित की निगाहों में वह भले ही काँटा हो, दूसरे सभी उसे प्यार करते थे।

पिछले वर्ष पण्डित ने माहे के पिछवाड़े मे दो हाथ चौड़ा, दस हाथ लम्बा और तीन हाथ गहरा गड्ढा खुदवा लिया।

इस गड्ढे मे कलमी आम के नये पेडों के लिए खाद तैयार करना है—यही कहना था पण्डित का। माहे ननिहाल गया हुआ था। उसकी माँ रिश्ते मे खोंखा पण्डित की पतोहू होती थी, लेकिन गालियों की बौछार अधिक देर तक वह बर्दाश्त कहाँ कर सकी? उसने आखिर अपना मुँह खोला। वह उन्हें एक के बदले चार सुनाने लगी तो भङ्ग पीसने का सोंटा उठाकर पण्डित उस औरत पर बरस पड़े। स्वाद ले-लेकर दोनों तरफ

१. बिस्वांसी। २. रसोइया। ३. गृहभूमि, डीह। ४. बैगन-भिण्डी।

की गालियाँ सुननेवालों को अब पड़ोसी की मर्यादा का ध्यान आया तो वे भी दौड़े और खोंखा पण्डित को सँभालने लगे। मगर बादल तो बरस चुका था, रह गया था धुला-फीका आकाश!

माँ के बुलाने पर अगले ही दिन माहे ननिहाल से दौड़ा आया। बड़ी देर तक वह माँ से घटना का विवरण सुनता रहा, शान्तिपूर्वक। फिर दोस्तों से मिलने गया। बिना उनकी राय लिये, कुछ निर्णय करना माहे के बूते की बात नही थी।

दिगम्बर मल्लिक माहे का दिली दोस्त था, नाइन्थ क्लास तक पढ-कर स्कूल छोड़ बैठा था। वह काफी चतुर तो था ही, धनी घर का लड़का होने से लोग उसे आदर और गौरव की दृष्टि से देखते थे। नौजवानो पर भी उसकी अच्छी धाख थी। धन या शिक्षा ने दिगम्बर के अन्दर घमण्ड उस मात्रा में नही भरा था जिस मात्रा में नम्रता। छोटी-बडी आयु के लड़के ध्यान से मल्लिक की बातें सुनते थे।

माहे की परेशानी दिगम्बर को अपनी परेशानी मालूम हुई। वह काफी देर तक इस पर सोचता रहा। नौजवानों का स्वय-निर्वाचित नेता होने से एक साथी की समस्या को सुलझाना वह अपना फर्ज समझने लगा। सबसे पहले उसने मुखिया से भेंट की और अनुरोध किया कि वह खोंखा पण्डित से कहकर माहे के पिछवाड़े का गढा भरवा दे। मुखिया को सब बात मालूम थी, पण्डित की जोर-जबर्दस्ती का भी उसे अच्छी तरह पता था। तो भी कई दिनों तक वह टाल-मटोल करता रहा।

मल्लिक, माहे और दूसरे नौजवान चुप नही बैठे थे। एक कोतवाल (चौकीदार) को समझा-बुझाकर अपने साथ थाना ले गया। हेड कानिस्टबिल[३] तिरहुतिया बाभन था और उस युवक की चाची के फुफेरे भाई का सरबेटा[४] था। मय कोतवाल के बयान के; वह माहे का केस थाने में दर्ज करा आया। पडोस के गाँव में एक नामी कम्यूनिस्ट लीडर थे, कामरेड तेजनारायण झा। माहे और मल्लिक खुद उनसे मिल आये। नजदीक के हाई स्कूल और मिडिल स्कूल के मास्टरों को भी समस्या

३. कान्स्टेबल। ४. साले का लड़का।

की जानकारी करा दी गई। बूलो टेन्थ[१] में पढ़ता था, फकड़ा[२] जोड़ने की अद्‌भुत सामर्थ्य थी उस छोकरे में। अगले ही दिन उसने एक फकड़ा तैयार किया और जमात के सामने लिखित रूप में उसे पेश किया। मल्लिक की आज्ञा से बूलो ने बाँचकर अपनी रचना सुनाई :

खोखा पण्डित बड़े सयाने
दच्छिन-पच्छिम गये कमाने
बेटा रोया, बेटी रोई
करम न इनसे छूटा कोई
चूहा मारो, करो पराश्चित
पाप हरेंगे खोखा पण्डित
रात बता देंगे यह दिन को
चूड़ा-दही खिलाओ इनको
माल मुफ्त का यदि पा जाएँ
फिर तो दुम दिन-रात हिलाएँ
पैसा पावें, गूह चाट लें
सूना पावें, गला काट लें
बड़े घाघ हैं पण्डित खोखा
ईसर को भी देते धोखा

सुनते समय बीच-बीच में हँसी के फव्वारे छूटते रहे। फकड़ा लाजवाब बना था, इस पर सभी एकमत थे। माहे ने कहा :

"दच्छिन-पच्छिम' की जगह 'दच्छिन-पूर्व' कर दो क्योंकि हमारे खोखा बाबा कमाने के लिए मुजफ्फरपुर से पच्छिम कभी नहीं गये हैं, हाँ, पढ़ने के लिए, सुना है कि काशी गये थे कभी !"

मण्डली फिर हँसने लगी। बूलो ने संशोधन पसन्द किया, लेकिन 'दच्छिन-पूर्व' नहीं क्योंकि एक मात्रा घटती थी; उसने 'दच्छिन-पूरब' करके समूचा फकड़ा एक बार फिर सुना दिया।

दूसरे दिन गाँव के लड़के इधर से उधर इन पदों को गाते फिरे।

१. दसवीं दर्जा। २. तुकबन्दी, पद, फिकरा।

पण्डित भीतर ही भीतर बेहद चिढ़े। पण्डिताइन से सलाह ली। उसे नौजवानो के पण्डित-विरोधी इस आन्दोलन की गन्ध लग चुकी थी, इसीलिए दस-पन्द्रह दिनों के लिए कहीं पहुनाई मे चले जाने का परामर्श दिया।

खोखा पण्डित ने मिर्जई पहनकर, माथे पर पगड़ी डालकर दूसरे दिन अनगुत्ते[1] इसटीसन का रास्ता पकडा था।

इधर पण्डिताइन ने लड़कों से बात-विचार करके उसी रोज गड्ढा भरवा दिया तो नयी पीढ़ी के लोगों को बडी खुशी हुई थी। तब से बड़े-बूढ़े और सयाने लोग नवयुवकों को प्रतिद्वन्द्वी दृष्टि से देखने लगे थे।

और आज समूचे गाँव की नाक कटनेवाली थी। पन्द्रह साल की बिसेमरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को ब्याही जानेवाली थी!! दिगम्बर ने यह खबर सुनी तो उसे ऐसा लगा कि किसी ने भर-भर कलछी खौलता हुआ कड़ुआ तेल बारी-बारी से उसके दोनों कानो मे डाल दिया है!

मल्लिक का माथा जोरों से ठनकने लगा, सोचने की रत्ती-भर भी सामर्थ्य उसके दिमाग मे नही रह गई।

तीन

खोखा पण्डित ने आधा घण्टा बातचीत कर चुकने पर पाया कि आदमी काफी अकबाली है। उमर जरा ज्यादा है तो क्या हुआ? कम उमर के लोग क्या नही मरते हैं? बाबा वैद्यनाथ की अनुकम्पा होगी तो इसी दूल्हे के घर विश्वेश्वरी की कोख से एक से एकइस सन्तान हो सकती है। ५०० बीघा जमीन की मलिकाइन बनेगी हमारी विश्वेश्वरी! इहलोक और परलोक दोनों बन जायेगा। मेरे नाना के दादा ने इसी आयु में विवाह किया था, लड़की का वयस बारह वर्ष का था और तब उन्हे चार बेटे और तीन बेटियाँ हुई थी—अर्जुन, भीम जैसे बलिष्ठ; द्रौपदी और सुभद्रा जैसी सुन्दर एवं सुगठित शरीरवाली! हाँ! नहीं,

१. सूरज उगने से पहले ही।

ऐसा अच्छा वर अब आगे ढूंढ़े नहीं मिलेगा; ॐ हूँ···शुभस्य शीघ्रम्··· गणेश गणेश, लम्बोदर करिवरवदन !!

भावों का आवेग इतना बढ गया कि पण्डित सौराठ के उस अनुपम लोकारण्य में अपनी जगह छोड़कर इधर-उधर घूमने लगे। घटकराज[1] मट्टुकी पाठक पर पण्डितजी पूरी तरह निर्भर थे। उन्ही महानुभाव ने विश्वेश्वरी जैसी कन्या-रत्न के लिए इस प्रकार का परम सुदुर्लभ वररत्न ढूंढ निकाला था। जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ—अब और क्या चाहिए ? घटकराज पण्डितजी के सहपाठी थे। सुगौना-ड्योढी के पुराने महाविद्यालय मे पचास वर्ष पूर्व दोनों जने साथ ही रहते थे। एक ही गृहस्थ-परिवार में दोनो के भोजन का प्रबन्ध था। किसी कारण से पाठक की पढ़ाई छूट गई और अब वह घटकराज के रूप में प्रख्यात थे। रामेसरी को छोड़कर, बाकी लड़कियों के लिए वर खोजने का श्रेय आप ही को प्राप्त था। यह आप ही के शुभ परामर्शों का परिणाम था कि पण्डितजी चार हजार का कर्जा चुका सके और दो बेटों की शादी के बाद अपनी-अपनी विधवा सास की जायदाद हाथ लगी।

पण्डित ने घटकराज को तीन रोज से उस बूढ़े वर की अँतड़ियाँ उधेड़ने में लगा रखा था और निःसन्देह, इस साधना में साधकप्रवर पाठकजी महाराज को अनुपम सफलता प्राप्त हुई थी।

कितनी जमीन है ?···
नगद कितना है ?···
लहना-तगादा कै हजार है ?···
पिछली पत्नियों के कितने लडके हैं ?···
लडकों के ननिहालवाले किस हैसियत के हैं ?
कोई रखेली तो नही है ?···
गोतिया हैं कि नही ?···
हैं तो किस हैसियत के हैं ?···
कागज-पत्तर, दस्तावेज-तमस्सुक, हिन्दलोट[2] वगैरह जिस सन्दूक में

१. ब्याह का सम्बन्ध पटानेवाला 'घटक' कहलाता है। २. हैंडनोट।

हैं, उसकी चावियों का गुच्छा किसके जिम्मे है ?··· .

असल आयु कितनी है ?···

साल में कै बार बीमार पड़ते हैं ?···

लड़कों से मनमुटाव तो नहीं है !···

बाप रे ! किसका मजाल है जो फलाँ बाबू के बारे में इतनी बात का पता लगावे ? लेकिन नहीं, है एक बहादुर ! घटकराज मटुकधारी पाठक !! अ हा हा हा !!!

—इस तरह गद्गद् होकर पण्डितजी घटकराज का सुमिरन कर ही रहे थे कि सदेह पाठकजी महाराज जाने किधर से अलक्षित ही आकर सामने खड़े हो गये।

"आइए पाठकजी, आइए। आप ही को तो खोजने निकला हूँ। हः हः हः हः !!"

घटकराज ने चट नसदानी निकाली—छोटे श्रीफल की चाँदी-मढ़ी डिबिया, चेन लगी हुई ठेपीवाली।

बाईं हथेली पर कौड़ी-भर नस निकालकर उसे पण्डितजी के आगे फैलाते हुए वह बोले—"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः[1] ! आपका हृदय बड़ा ही पवित्र है खोंखाइ बाबू ! शुद्ध चित्त से आप यहाँ आये थे, बच्ची के लिए अखण्ड सौभाग्य की कामना बाबा कपिलेश्वरनाथ अवश्य पूर्ण करेंगे। पंजीकार से पता लगा आया हूँ, दोनों कुलों में विवाह सम्बन्ध का अधिकार होगा। कोई भी बाधा नहीं, शुभ शुभ शुभ शुभ···दुर्गा, माधव, गणेश···"

प्रसन्नता के मारे खोंखा पण्डित ने मुँह बा दिया, वह नस लेना तक भूल गये !

—ऐं सचमुच अधिकार हो गया ?

—और नहीं तो क्या ?

अन्दर से जनेऊ जरा निकालकर उसे अंजलि की दसों अंगुलियों में लपेटते हुए पण्डित ने कहा—"मैं आमरण आपका ऋणी रहूँगा पाठक

१. सचाई और मेहनत से सब काम बनते हैं।

जी ! आपने हमारी विश्वेश्वरी का उद्धार कर दिया, विश्वेश्वरी का ही नहीं, हमारे एकइस पुरखो का आपने आज उद्धार किया है…"

पण्डित की आँखें छलक आई, इससे आगे उनके मुँह से एक आखर भी नहीं निकला। कृतज्ञता के भाव दिमाग की एक-एक रग को फुलाने लगे। इतने बड़े खानदान का प्रतापी मालिक आज मेरे दरवाजे को अपने पैरों की धूल से पवित्र करेगा। पास-पड़ोस के इलाकों में नौगछिया गाँव का नाम इन्द्रधनुष की तरह अब उजागर हो उठेगा ! विश्वेश्वरी आज रानी बनेगी, वह ऐसे घर की मालकिन बनेगी जहाँ घोड़े हिनहिनाते है और हाथी झूमते रहते हैं…फिर पण्डित की निगाहों में नौ अंक पर दो शून्य नाच उठे, बड़ी शकल मे। नौ का वह अंक और उस पर के वे दोनों शून्य धीरे-धीरे बड़े होते गये, बड़े होते गये और बड़े होते गये—

घटकराज ने उनका हाथ पकड़ा—"चलिए खोंखाई बाबू, शुभ कार्य मे विलम्ब सर्वथा अनुचित होता है। आज ही रात को सिंदूरददान[1] हो जाय।"

पण्डित नस के शौकीन नही थे। लेकिन आत्मीयता प्रकट करने के लिए वह इस काम मे पाठकजी का साथ देते थे। सो, जरा-सी नस लेकर खोंखा पण्डित ने अपने को सँभाला।

लगन का वह अन्तिम दिन नहीं था, फिर भी पटापट सौदे पट रहे थे। लड़कीवाले और लड़केवाले, दोनो एक-दूसरे का शिकार कर रहे थे। कलकत्ते के रायल एक्सचेंज में, बम्बई के कालबादेवीवाले मुहल्लों में और दिल्ली के चाँदनी चौक की गलियो मे सट्टेबाजी की हलचल देखी है कभी आपने ? हाँ ? तो बस समझ लीजिए कि मैथिल ब्राह्मणों की व्याह की इस अनोखी मण्डी मे कुछ वैसा ही चल रहा था ! गजब की चहल-पहल थी। ऐसा लगता था कि समूची दुनियाँ के लोग इन चार दिनों के अन्दर ही क्वारों-क्वारियों का व्याह करा डालेंगे ! घटकों और दलालों की कुछ मत पूछिए, वे अँधेरे में ही निशाना साधते हैं। रिश्तों

१. सँथ में सिंदूर डालने की विधि, व्याह।

की तुक शायद ही कभी ठीक बैठती हो…

नौ सौ रुपये पर बात पक्की हुई थी, पचास रुपये घटकराज को मिले थे। ताड़ के लम्बे पत्ते पर लाल स्याही से पंजीकार ने 'सिद्धान्त'[१] लिखा। वर—बाबू श्री चतुरानन चौधरी—की ओर से पंजीकार को दक्षिणा-स्वरूप एक दसटकही नोट मिला।

पिता की रुद्र प्रकृति से पूर्ण परिचित होने के कारण साथ के तीनों में से कोई बेटा इस कार्य में किसी प्रकार की आपत्ति प्रकट नहीं कर सका—एक था पितृभक्त संस्कृत अध्यापक, दूसरा मधुबनी अदालत में किसी वकील का मुहर्रिर था और तीसरा मैट्रिक तक पढ़ा था। गठरी-मोटरी, दरी-कम्बल-तकिया, लोटा-खड़ाऊँ ढोनेवाला सुवधा भला यह सब क्या जाने ?

नोट की गड्डी सँभालकर पण्डित ने दो टमटम ठीक किये। घोड़े तगड़े और तेज थे। रास्ता खूब अच्छा नहीं था और मौसम था बरसात का, नहीं तो चार कोस का यह फासला वे डेढ़ घण्टे में मार लेते ! खैर, अढ़ाई घण्टे तो तब भी काफी थे। ट्रेन से जाने पर कोई फायदा नहीं। और फायदा हो या न हो, अवध-तिर्हुत रेलवे (O. T. R.) ऐसे बड़े मेलों के अवसर पर भी सनातन प्रथा से ही काम लेती है ! न टिकट ही मिल पाता और न वे चढ़ ही पाते ट्रेन में ! मान लो, इन दोनों मोर्चों में फतह हासिल कर भी लेते तो क्या आधी रात तक नौगछिया पहुँच जाते ? नहीं, बिल्कुल नहीं।

तो खोंखा पण्डित ने पैसे का मोह छोड़कर दो टमटम जो भाड़े पर कर लिये सो उनकी समझदारी का ही सबूत था।

दूल्हे ने कहा, वह अपने घोड़े पर ही जायेगा। उनसे बाद को सौराठ से विदा होगा और तारसराय [स्टेशन] उनसे पहले ही पहुँच लेगा !

उसे अपने घोड़े पर अभिमान था, कत्थई रंग का औसत कद का वह

१. दोनों कुलों में ब्याह का रिश्ता कायम हो सकता है, वर-वधू का यह सम्बन्ध सर्वथा निर्दोष है…इस प्रकार का शास्त्रीय फर्मान।

जानवर वाकई बिजली का लम्बोतरा लट्टू था, जरूर जई और मक्खन खाता रहा होगा !

पण्डित को दुविधा में देखकर बुड्ढा उम्मेदवार[1] बोला—"चिन्ता मत कीजिए रत्ती-भर, मैं अभी आया।"

यह कहकर उसने घोड़े की पीठ थपथपाई, हल्की हिनहिनाहट अभी-अभी उमड़ते आ रहे बादलों को मानो डाटने लगी। पच्छिम का आकाश अभी साफ था, सूरज तेजी से नीचे उतर रहा था। लोगों की भीड़ भी क्रमशः छँट रही थी। बदली के आसार देखकर वे पास-पड़ोस के गाँवों मे 'रैन बसेरा' के लिए चल पड़े थे। नवजात धान के तोता-पंखी पौधों से लहलहाते खेतों की पगडण्डियाँ अपनी छातियों पर हजारों-हजार मानव-चरणों की धमक महसूस करके परम प्रसन्न हो रही थीं और सौराठ के उस महामेला को दुआ दे रही थी। सौराठ है भी बसा ऐसी जगह जिसके सभी ओर कोसों तक खेत ही खेत फैले है—धनहर[2] खेत; बरसात के मौसम मे इनकी छटा बिल्कुल निराली होती है। ऐसे दृश्य से प्रभावित होकर मिथिला के किसी कवि ने कहा होगा :

हे हरित-भरित हे ललित वेश !
हे छोट-छीन सन हमर देश !!

दूल्हे का सामान, उसका भाजा, नौकर, खोंखा पण्डित के दो लड़के अगले टमटम पर थे। घटकराज, पण्डित, बड़ा लड़का, सुवधा और इन लोगों की गठरी-मोटरी पिछले टमटम पर।

टमटम चले तो घटकराज और पण्डित दोनो बुजुर्गों के मुँह से मंगल-पाठ का श्लोक निकलता रहा :

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुड़ध्वजः।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः॥

दूल्हे का भाजा भी आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण था, स्वस्तिवाचन के इस अवसर पर वही क्यों पीछे रहता ? गम्भीर स्वर मे उसके मुँह से

१. विवाहार्थी। २. धान की खेती के उपयुक्त, सिर्फ धान की ही पैदावार वाले।

निकला .

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषां इन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ।।

और, टमटमवालों ने अपनी टिटकारियाँ भरनी शुरू कीं । घोड़े सरपट दौड़ने लगे ।

पिछले कई दिनों की थकान, मानसिक द्वन्द्व और ऊब, और अब कामयाबी का हल्का-सा नशा—कुल मिलाकर खोंखा पण्डित को झपकियाँ आने लगी । घटकराज ने सहपाठी के सिर को पीठ का सहारा दे दिया । खुद वह नस की मस्ती में विभोर हो गये ।

चार

आँखें खुली तो रामेसरी चट से उठी और देखने गई कि बिसेसरी कहाँ है, क्या कर रही है ।

घर के बड़े लड़के को पण्डित और पण्डिताइन 'बच्चन' कहते थे । परिवार के सभी लोग उसे यही कहकर पुकारते, बहुएँ ऐसा नही कर सकती थीं । बड़ी बहू तो खैर पति का कोई भी नाम क्यों लेने लगी ? बहुतों की तरह उसके भी दो नाम थे—बच्चन और गिरिजानन्द ! लाड़-प्यार, आवेग-आवेश के कारण दूसरा नाम दब गया था ।

रामेसरी सन्तान मे सबसे बड़ी थी । बच्चन उससे चार साल छोटा था । वह बत्तीस वर्ष की थी, बच्चन अट्ठाइस का । बाकी भाई-बहिनें ढाई-ढाई, तीन-तीन साल के दर्म्यान पैदा होते आये थे ।

अभी जाकर रामेसरी ने बच्चन के घर में बाहर से ही झांका, कोई नही था । फिर वह मझली बहू के कमरे की ओर गई, उधर से हँसने की मृदु-मन्द ध्वनि उठी ।

—हाँ, यही होगी बीसो मेरी !

रामेसरी बिल्कुल अन्दर आ गई । बोलचाल बन्द, हँसी-ठिठोली सब बन्द । तीनो बहुएँ घर के कामो में मशगूल थीं । एक के आगे सूप था, वह चलनी से आटा चाल रही थी । दूसरी के आगे तरकारी काटने-वाली हँसिया और परवल-आलू से भरी डलिया पड़ी थी, वह आलू के

ताश खेलना रामेसरी की नजरों में एक भारी अपराध था, क्योंकि उसकी बालविधवा ननद को ताश की पत्तियों ने ले जाकर पेशावर पहुँचा दिया था ! पड़ोस के एक नौजवान ने उस 'मुंहझौंसी'[1] के मन मे 'कोटपीस' खेल का ऐसा चस्का डाल दिया था कि एक रात वह उसके साथ भाग खड़ी हुई ! और न जाने क्या-क्या हुआ !

तो अभी इसी बात को लेकर अदगोई-बदगोई[2] हो रही थी ?

रामेसरी को अपनी बेटी पर गुस्सा आया—कहाँ जाकर बैठ गई है कलमुँही !

इतने में पायल की रुनझुन-रुनझुन सुनाई पड़ी, बिसेसरी आ रही थी। रामेसरी घर से निकल गई और आँगन के बीचोबीच खडी हो गई।

—कहाँ गई थी ?

—जरइलवाली काकी ने बुलाया था।

—हूँ ! चल, इधर आ !

बीसो अपनी माँ के पीछे हो गई।

दोनों अन्दर आये, गुमसुम। रामेसरी पहियोंवाली पुरानी सन्दूक पर बैठी, बिसेसरी दोनों हथेलियाँ उलटकर उँगलियों की पीठ पर के सुनहले रोएँ देखती रही। माँ ने उसे बैठने के लिए नही कहा।

बीसो माँ की इकलौती लड़की थी। बेटा भी थी, बेटी भी थी। रामेसरी ने बड़े ही प्यार से पाल-पोसकर उसे बडा किया था। बडी उमर तक निपूती रहनेवाली स्त्री जिस नेम-निष्ठा से, जिस नेह-छोह मे तुलसी के पौधे को पोसती है, उसी तरह रामेसरी ने बिसेसरी को पोसा था। कभी अवाच-कुवाच नही कहती थी। मारना-पीटना तो दूर, खीझ से भरकर कभी चपत तक नही लगाती।

रामेसरी का घरवाला अच्छा पण्डित था, नेकनीयत और मिठ-बोला। तीन वर्ष के उस छोटे से दाम्पत्य-जीवन मे रामेसरी पर उसने कभी हाथ नहीं उठाया, कभी गाली नहीं दी। अपने पति से रामेसरी ने

१. मुहजली। २. बुरी आलोचना।

रुपये-पैसे तो नहीं, दो-चार गुण अच्छी मात्रा में था — पति के स्वभावों में आकाश-पाताल का अन्तर था। अच्छे थे, लेकिन प्रकृति उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की पति ही वह व्यक्ति था जिससे रामेसरी के जीवन— हुआ था।

बिसेसरी ऐसी माँ की बेटी थी। माँ के शील-स्वभा— अपनी प्रकृति में अच्छी तरह उतार ले आई थी। अप पढ़ने का भी यह सुयोग जो उसे मिल सका सो अपनी म माना की कतई यह राय नहीं थी कि बिसेसरी पढ़े-लिखे। के लगातार आग्रह का ही यह फल था कि खोखा पण्डित का स्कूल जाना बर्दाश्त कर सके।

बिसेसरी अपनी माँ से कोई बात छिपाती नहीं थी, मानो सहेलियों का-सा लगाव था। माँ ठहरी बाल-विधवा, इकलौती—दोनों एक-दूसरी का सहारा थीं, अभिभावक साथिन भी।

थोड़ी देर अलग खड़ी रहकर बिसेसरी माँ से बिल्कुल गई। बाहर निगाहें फेंककर फिर अपनी नजरें उसने रामेसरी में गड़ा दीं।

माँ भी बेटी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। भ के भयंकर परिणामों की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, हो गये। बेटी को खींचकर माँ ने धड़कते सीने से सटा लिया का कोमल कलेवर रामेसरी की थपेड़ खाँटों के घेरे में कस गया थोड़ी देर तक एक-एक की गर्दन दूसरी के कन्धे पर पड़ी रही

—माँ!

—बीसो!

—आज यह क्या हो गया है तुझे?

....

—एक बात बताऊँ?

—बोल!

रामेसरी ने विसेसरी को छोड दिया, वह सन्दूक से सटकर खडी हो गई। साड़ी का पल्ला सँभालती हुई कहने लगी—माहे भइया बता रहे थे, यह शादी हम नही होने देंगे।

रामेसरी के कपार मे तनाव पड़ गया, आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। बाहर की ओर एक नजर मारकर वह फुसफुसाई—चुप ! चुप ! किसी ने सुन लिया तो पानी मे आग लग जायेगी ! माहे तो पागल है, यों ही अल्लम-गल्लम वकता रहता है···

—दिगम्बर भी तो था।

—गे मइयो[1] ! और, तू वहाँ यही सब सुनने गई थी ?

विसेसरी बेखबर नही थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का जिबह कराएँगे···जब से उसने बूढ़े दूल्हे की बात सुनी है तब से उसकी कलेजी भुन रही है। अब तक अपनी बेचैनी को वह जब्त किये हुए थी, इसके बाद धीरज ने जवाब दे दिया। तन-मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पैरों को लडखड़ाने से बचा लिया, यही क्या कम था ? बकोटकर आखिर उसने बायें हाथ से ठुड्डी और गालो को दबा लिया। जीभ, तालू, दाँत, मसूड़े, होठ—सभी उस शिकंजे में कस गये। वह अपने-आपमे जूझने लगी कि बूँद-भर भी आँसू गिरने नही पाये !

खोपड़ी में मानों बीसियों तकलियाँ बिजली की गति से चल रही थी—किरं रं रं रं रं रं रं रं···

बीच ही में रामेसरी ने उसे झकझोरा और चुमकारा, ढाढस दिया—पगली कही की ! ऐसा भी कहीं हुआ है ?

संवेदना की इस चुमकार ने बिसेसरी के हृदय को मोम-सा पिघला दिया। दो बड़ी-बड़ी बूँदें आँखों का कूल-किनारा पार करके नीचे धरती पर गिर पड़ीं—टप् टप् !

अपनी साड़ी के आँचल के खूँट से माँ ने बेटी के आँसू पोंछ डाले। थोडी देर के लिए उसे अकेली छोड़कर वह बाहर निकल आई। माहे

१. री मइया !

रुपये-पैसे तो नही, दो-चार गुण अच्छी मात्रा में पाये थे। पिता और पति के स्वभावों में आकाश-पाताल का अन्तर था। विद्वान् तो दोनों ही अच्छे थे, लेकिन प्रकृति उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। माँ के बाद, पति ही वह व्यक्ति था जिससे रामेसरी के जीवन-तत्त्वो का निर्माण हुआ था।

बिसेसरी ऐसी माँ की बेटी थी। माँ के शील-स्वभाव का असर वह अपनी प्रकृति मे अच्छी तरह उतार ले आई थी। अपर प्राइमरी तक पढने का भी यह सुयोग जो उसे मिल सका सो अपनी माँ की बदौलत। नाना की कतई यह राय नही थी कि बिसेसरी पढे-लिखे। वह तो रामेसरी के लगातार आग्रह का ही यह फल था कि खोखा पण्डित अपनी नतनी का स्कूल जाना बर्दाश्त कर सके।

बिसेसरी अपनी माँ से कोई बात छिपाती नही थी, दोनों में अब मानो सहेलियों का-सा लगाव था। माँ ठहरी बाल-विधवा, बेटी ठहरी इकलौती—दोनों एक-दूसरी का सहारा थीं, अभिभावक भी थी और साथिन भी।

थोडी देर अलग खड़ी रहकर बिसेसरी माँ के बिल्कुल करीब आ गई। बाहर निगाहें फेंककर फिर अपनी नजरें उसने रामेसरी की आँखों में गडा दीं।

माँ भी बेटी की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। अनमेल ब्याह के भयकर परिणामो की कल्पना से उसकी रग-रग दहक उठी, रोंगटे खड़े हो गये। बेटी को खीचकर माँ ने धडकते सीने से सटा लिया, बिसेसरी का कोमल कलेवर रामेसरी की अधेड बाँहो के घेरे मे कस गया। थोड़ी-थोड़ी देर तक एक-एक की गर्दन दूसरी के कन्धे पर पडी रही।

—माँ!

—बीसो!

—आज यह क्या हो गया है तुझे?

....

—एक बात बताऊँ?

—बोल!

रामेसरी ने बिसेसरी को छोड़ दिया, वह सन्दूक से सटकर खडी हो गई। साड़ी का पल्ला सँभालती हुई कहने लगी—माहे भइया बता रहे थे, यह शादी हम नहीं होने देंगे।

रामेसरी के कपार में तनाव पड़ गया, आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। बाहर की ओर एक नजर मारकर वह फुसफुसाई—चुप ! चुप ! किसी ने सुन लिया तो पानी में आग लग जायेगी ! माहे तो पागल है, यों ही अल्लम-गल्लम बकता रहता है···

—दिगम्बर भी तो था।

—गे मइयो[1] ! और, तू वहाँ यही सब सुनने गई थी ?

बिसेसरी बेखबर नहीं थी। उसे अच्छी तरह मालूम था कि नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का जिवह कराएँगे···जब से उसने बूढ़े दूल्हे की बात सुनी है तब से उसकी कलेजी सुन रही है। अब तक अपनी बेचैनी को वह जब्त किये हुए थी, इसके बाद धीरज ने जवाब दे दिया। तन-मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पैरों को लड़खड़ाने से बचा लिया, यही क्या कम था ? बकोटकर आखिर उसने बायें हाथ से ठुड्डी और गालों को दबा लिया। जीभ, तालू, दाँत, मसूड़े, होंठ—सभी उस शिकंजे में कस गये। वह अपने-आपमें जूझने लगी कि बूँद-भर भी आँसू गिरने नहीं पाये !

खोपड़ी में मानो बीसियों तकलियाँ बिजली की गति से चल रहीं थी—किर्र र्र र्र र्र र्र र्र र्र र्र···

बीच ही में रामेसरी ने उसे झकझोरा और चुमकारा, ढाढ़स दिया —पगली कहीं की ! ऐसा भी कहीं हुआ है ?

संवेदना की इस चुमकार ने बिसेसरी के हृदय को मोम-सा पिघला दिया। दो बड़ी-बड़ी बूँदें आँखों का कूल-किनारा पार करके नीचे धरती पर गिर पड़ीं—टप् टप् !

अपनी साडी के आँचल के खूँट से माँ ने बेटी के आँसू पोछ डाले। थोड़ी देर के लिए उसे अकेली छोड़कर वह बाहर निकल आई। माहे

१. री मइया !

और दिगम्बर भला इस ब्याह को कैसे रोकेंगे, यही बात रामेसरी के माथे में घिरनी[1] बनकर नाचने लगी। भला, जब दरवाजे पर दूल्हा आकर खड़ा हो जायेगा तो उसे कोई किस मुँह से लौटने कहेगा ? ऐसा भी कहीं हुआ है ? बाबू जब हाथ धरके किसी भलमानस[2] को उठा लाये हैं तो उसकी और अपनी लाज को अलग-अलग करके थोड़े ही देखा जायेगा ?...

पिता की प्रतिष्ठा रामेसरी के संकल्प को जड़-मूल से हिला रही थी। बार-बार वह अपने पर घटाकर इस ब्याह के बारे में सोचने लगी —कैसी अच्छी जोडी थी हमारी। लेकिन वह तीन ही वर्ष जिये। माँ-बाप अपने जानते सन्तान को कुआँ में थोड़े ही फेंकते हैं ? सुना है, धन-सम्पदा काफी है। रानी बनकर रहेगी मेरी बौसो...उमिर कुछ अधिक है तो क्या हुआ ?

क्या हुआ ! धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी ? हे राम !

...मगर, खान-पान, कपड़ा-लत्ता, गहना-गुड़िया, जर-जेवर...और अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ ! नहीं ? ना, जरूर अमार लगा रहता होगा। वह तो अपने इलाके का राजा है !

फिर एक दफे रामेसरी की आँखों के आगे अपनी बेटी का मासूम मुखड़ा जोरों से नाच उठा और उसका सिर घूमने लगा, फिर एकाएक भवें तन गईं। अपने-आप वह बुदबुदाई : नहीं, नहीं होगा ! नहीं होगा यह ब्याह !!

तब रामेसरी को माहे और दिगम्बर की बात याद आई...क्या कर सकते हैं वे ?

उपेक्षा-भरी हल्की हँसी के सहारे अपनी याद को उसने उन नौजवानों की चंगुल से छुड़ा लेना चाहा कि माँ की आवाज सुनाई पड़ी : बुच्ची ?

१. लट्टू। २. भला आदमी।

—आई अम्मा !

यह रामेसरी का दुलार का नाम था।

वह सँभली, पूरी तरह अपनी चेतना को उसने साकांक्ष बनाया और माँ के सामने जा खड़ी हुई।

माँ मुखिया के यहाँ से पेट्रोमैक्स लिवा लाई थी।

—इसे बरामदे मे रखवा ले, चौकसी रखना। ऊधमी लड़के कही इस पर हाथ-वाथ न डालें।

—अच्छा।

रामेसरी ने उस बड़े लैम्प को माँवाले घर के बरामदे में रखवा लिया। मुखिया का हलवाहा लैम्प रखकर चला गया।

इसके बाद रामेसरी को माँ का दूसरा आदेश मिला—विसेसरी के बाल सँवारने होंगे, चोटी काढ़नी होगी।

पण्डिताइन ने इस बेबसी पर अफसोस जाहिर किया कि आज नतनी की कंघी-चोटी वह खुद अपने हाथों नही कर सकी ! बेचारी को बहुत सारे काम करने थे, अकेली राधा कितना नाचे ! बड़ी और छोटी बहू ने पिछले कई दिनों से सविनय अवज्ञाभंग आन्दोलन छेड़ रखा था एक प्रकार का। रसोईघर को रामेसरी सँभाले हुए थी। घर-आँगन का बुहारना-लीपना और अपने तीन बच्चो को सँभालना—मझली बहू के जिम्मे काफी काम था। बडी के दो बच्चे बडे हो चुके थे, दो छोटे थे; छोटी के दो बच्चियाँ थी। दोनों अपने बच्चों में उलझी रहती, घर के सामूहिक कामों मे जरा भी दिलचस्पी नही लेती। खाना तैयार हो जाने पर मेहमान की तरह जातीं और रसोईघर से खा आती, जीमने के बाद धुले हुए हाथ अपनी-अपनी कोठरी में ही आकर सुखाती ! बच्चे तो खैर अपना-अपना थाली-कटोरा सँभाले दिन-भर पंगत जमाये रहते, उन्हे यही ट्रेनिंग मिली थी। मझली अपने काम कर चुकने पर सास और ननद की जरा-मरा सेवा जरूर करती थी। विसेसरी भी काफी काम करने को तैयार रहती, लेकिन रामेसरी को यह पसन्द नही था कि लडकी इस जंजाल मे अभी से जुत जाय। बाकी तीन लड़के थे जो परिवार के लिए बाहरी काम भी करते, थोड़ी-बहुत खेती भी और अपना पढ़ते भी।

पाँच

स्टेशन कोस-भर दच्छिन था, तारसराय मुडिया। नौगछिया स्टेशन से सीधे उत्तर पड़ता था।

लेकिन शाम को जो दो टमटम गाँव के भीतर घुसे वे दच्छिन नही, उत्तर से आये थे।

ट्रेन से न आकर सड़क से आये थे, इसी से।

खोंखा पण्डित ने उमर छिपाने की लाख कोशिश की मगर दूल्हे के भाजे ने इतना तो कबूल कर ही लिया कि मामाजी की आयु पचपन वर्ष की है। पण्डित की बात से तो यही लगता था कि अधिक से अधिक चालीस की उमर होगी वर की।

दूल्हा के आने मे अभी दो घण्टे की देरी थी।

शुक्ल पक्ष था तो क्या, बरसात का मौसम शुरु हो चुका था। जेठ सुदी तेरस। ब्याह का लगन साढ़े दस बजे रात का था। ठीक उसी वक्त उस गाँव के भी दो ब्राह्मण-युवको की शादी कही होनेवाली थी। इसके बारे मे भी लोग बातें कर रहे थे। ताजा और गरम खबर लेकिन पण्डित की नतनी के लिए आनेवाले इस दूल्हे को लेकर ही उड़ रही थी।

साफ-साफ तो कोई किसी को बताता नही था। सभी कह रहे थे—"बडा अच्छा हुआ; घर भी ठीक, वर भी ठीक। विसेसरी को जैसा चाहिए वैसा ही दूल्हा, भगवान ने जुटा दिया···" मुदा अन्दर-अन्दर कुछ दूसरी ही बातें सुनाई पडती थीं। जहाँ देखिए, दो-तीन जने खड़े हैं या बैठे है और फुसफुस चल रही है। चलिए, आप भी अपना कान कही भिड़ा दीजिए :

—देखा तो नही है अभी !

—अरे, अभी आया ही कहाँ ?

—दुपहर रात से पहले थोड़े ही आयेगा !

—पण्डित तो बुड्ढा बैल पकड लाया है, राम-राम !

—समूचे गाँव की नाक काट ली इसने तो ?

—और नही तो क्या !

—अच्छा, यह तो बताओ, कितना गिनाया होगा पण्डित ने ?

—डेढ़ हजार।
—धत् ! इतना कौन देता है ?
—अजी नही, बड़ी चिड़िया फँसी है !
—हजार से ज्यादा नही मिला होगा !
—आठ सौ !

मुखियाजी के दालान के सामने चार-पाँच जने बैठे थे। अलग एक ओर बम्बई आम का ढेर लगा था। चोरो के डर से तोड लिया गया था। अपनी बाड़ी[1] मे मुखिया के बाप ने चार पौधे कलमी आम के लगाये थे। दो बम्बई के, एक सफेदा का और एक कलकतिया का। अबकी मालदह (लँगड़ा) तो दगा दे गया था, बाकी तीनों पेड खूब फले थे।

क्या होगा अधिक लेकर ?—मुखिया का भाई बोला। वह खैनी ठोककर फिर कहने लगा एक अधेड़ आदमी की ओर अपना रुख करके—सुनते हैं फतूरी काका ?

कहो न !—फतूरी बोले और बगल में माथा झुकाकर निचले होंठ को दिये की शकल मे कर लिया, बड़ी देर तक भीतर दबाकर रखा हुआ सुरती का जूम 'पिच्' से जमीन पर गिरा। लार की तार टूटी तो धोती के खूँट से होंठ पोंछकर वह पूछनेवाले की तरफ गर्दन बढा चुके थे।

मुखिया का भाई भीमनाथ अपने खास श्रोता को सतर्क पाकर कहने लगा—क्या होगा इससे अधिक लेकर ? देवता-पितर और बाल-बच्चो के लिए यही आम काफी है, ऐं फतूरी काका ? नही ?

हाथ फरकाकर फतूरी बोले—दुर् बुड़बक कही के ! आम से भी कभी किसी का मन भरा है ?

सवा पसेरी के वजन की बात सुनकर कमजोर दिलवाला भीम एकदम सिटपिटा गया। दबी आवाज निकली—सो नही फतूरी काका ! सो नही, मैंने सो कहाँ कहा है ? कहा है कि इतना आम···

इतना आम फतूरी ठाकुर दो बैठक मे चटकर जायेंगे।—अपना सीना

१. वासभूमि के साथ की खाली जगह।

ठोककर वह वीरपुंगव गरज उठे।

हतप्रभ होकर भीम वहाँ से उठ गया, सुरती अभी तैयार नहीं हुई थी।

कहाँ चले ?—स्वर हल्का करके पूछा।

—कहीं नहीं, जरा बछड़े को देखता हूँ…बेचारे को डाँस परेशान कर रहे हैं…बाईं मुट्ठी में चून-तम्बाकू दाबे दाएँ हाथ से अँगौछी की गदा घुमाते हुए चले गये भीमनाथ, सामने जहाँ तीन-चार गाय-बैल बँधे थे।

तब तक कथा का सूत्र खोखा पण्डित को छू चुका था।

—कैसे हो ? यह सब क्या सुन रहे हैं ?

—बुड्ढा बैल यह कहाँ हाथ लगा पण्डित के ?

—जिसकी कहीं न पूछ, उसी के लिए तो सौराठ का मेला लगता है !

—सुना है कि रतौन्ही[1] है !

—अजी, दाँत तो बत्तीसो झड़ चुके हैं !

—सुनाई पड़ता है कि नहीं ?

—है मुदा भारी मातवर[2]…

—सो तो है !

—दो हाथी भी है !

—भारी मातवर है, कल यहाँ घर पीछू दो-दो रुपैया बाँटेगा, हाँ !

—हाँ बाबू, खानदान बड़ा हो तो मुट्ठी भी खुली ही होती है।

—दलिद्दर के दरवाजे पर इतना बड़ा आदमी आ रहा है, बात-व्योहार में कहीं कुछ अलट-बिलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी !

—सो, मुखियाजी रहबे करेंगे।

इस पर मुखिया भरियाकर बोला—फतूरी काका भी रहेंगे ही !

सभी ने एक स्वर से कहा—फिर काहे की तरद्दुत !

१. रात के वक्त न सूझने की बीमारी। २. धनी।

मुखिया के मकान के कुछ आगे बढने पर छोटा-पुराना एक पोखरा था। पचासों साल की लापरवाही का जीता-जागता सबूत। पनियाही घासों की हाथ-भर मोटी घनी तह छाई हुई थी, इस कछार से उस कछार तक। चौकोर गढे की छाती पर स्वयंभू घासों का वह अजीव मैदान जेठ के इस महीने में भी आँखो को अच्छा नही लगता था। बीचो-बीच जाठ[1] खड़ी थी, बीस-एक हाथ ऊँची रही होगी। अपने पुरखों की इस कीर्ति की ओर से मुखिया और उसके गोतिया लोग बिल्कुल उदास थे। भिड पर तीन तरफ केवटों और ग्वालों के घर थे, चौथी ओर साहड़, जामुन, बेल, खैर, जीमड, पितोझिया का मामूली जङ्गल था। गांव-भर की दिसा-फराकत का स्थान। उस ओर सड़क से बाहर का कोई अन्धा आता होता तो विकट दुर्गन्ध के मारे वह यों ही समझ लेता था कि गाँव पास ही है।

छेदी राउत के बथान की छोर उस पोखरे के भिड को छूती थी। वहां तीन-चार अधेड़ औरतें खड़ी थी। वही फुसुर-फुसुर चल रही थी:

—सुना है तुमने ?

—क्या, कुछ बतायेगी भी कि ऐसे ही ?

—खोंखा पण्डित की नतनी का ब्याह हो रहा है।

—कहाँ का लड़का है ?

—लड़का ! हिः हि. हिः हिः···लडका ! !

—ठूँठ पीपल की गांठ उठा लाया है पण्डित।

—भग् !

—दुर् जो[2] ! सच कहती हूँ तेरी कसम !

—खचिया-भर रुपैया गिनाया है पण्डित ने !

—मगे मैंइयां ! एको गो दांत नही होगा उसके···

—बिसेसरी कैसे बुड्ढे के साथ सोयेगी ?

—सोयेगी कपार ? कमर कूटेगी।

—बुढवा भारी मातबर है।

१. लट्ठ, लाट। २. दुत्।

—मातवर होगा तो अपने घर, हमें क्या ? देगी पण्डिताइन एक छीमी केला भी हमें ?

दिगम्बर का बैठका सूना पड़ा था। तख्तपोश के नीचे मिलेविया कुत्ता गोलियाकर बैठा हुआ था। आकाश मे हल्के-फुल्के धुएँ-से बादलों से तेरही चन्द्रमा की हाथापाई देखने लायक थी।

बूलो की भाभी बीच आँगन में पुराने कम्बल के टुकड़े पर बैठी हुई थी। सामने पूनियों से भरी डलिया थी, कटोरा था, तकली थी। गोदी का बच्चा सोनेवाला था। अभी वह एक थन को बाएँ हाथ से थामकर हौले-हौले पी रहा था, दाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियाँ दूसरे थन की घुण्डी पर यों ही फिर रही थी। माँ तकली-पूनी परे करके अभी सोये बच्चे की पीठ और जाँघों पर अपना दाहिना हाथ फेरने में मगन थी।

अन्दर, घर में लालटेन की हल्की मगर साफ रोशनी छाई हुई थी, वह प्रकाश चौकठ लाँघकर आँगन की बीचवाली दो हाथ जगह की परिधि को क्रमश' अधिक फैलाता हुआ चला गया था और सामने अमरूद की सादी हरी पत्तियोवाली घनी टहनियों में उलझकर अपनी गति खो बैठा था।

हल्की-पतली फुसफुस !

मन की समूची शक्ति`लगाकर सुनोगे तो भी पल्ले नही पड़ेगा कुछ, हाँ !

तो, भीतर बूलो किसी से सलाह-मशविरा कर रहा होगा ! क्यों, है न यही बात ?

अच्छा ? यह बात है !

बूलो, माहे, दिगम्बर···दो और अपरिचित चेहरे !

फुसफुस

—जल्दी करो !

---हाँ माहे, देर हो रही है !

—माहे, तुम फौरन निकलो।

—हूँ।

—और तुम दोनों भी !

—अच्छा !

बूलो और दिगम्बर को छोड़कर बाकी तीन निकल गये, एक-एक करके ।

अपरिचितो में से एक हेहुआ था, दूसरा गोनउड़ा । हेहुआ केवट था, गोनउडा था ग्वाला । दोनों नौजवान थे, मसें भीग रही थी ।

हेहुआ के चेहरे पर माई की गोटो के दाग थे । सांवली सूरत, डील-डौल का अच्छा । कद औसत । पहनावे मे नौ हाथ धोती, बस ? नही, काले धागों में गुंथा हुआ चाँदी का कण्ठा गले मे और दाहिनी भुजा पर मूँगे का वड़ा-सा दाना—छेद के सहारे पीले धागों की तीन बारीक डोरियो से बँधा था···बस !

भूरे बालोंवाले श्री गोनउड राउत यादव भाई थे, सूरत गोरी-भूरी और आँखें बादामी । कद ऊँचा, चेहरा भरा हुआ । पहनावे मे धोती । हाथ-गोड[1] बड़े-बड़े ।

वे दोनों निकल गये तो माहे जरा देर तक भाभी के पास बैठा रहा ।

फुसफुसाकर वह बोली—देखो बाबू, मार-पीट नही करना !

माहे दाहिने हाथ की एक उँगली से बार-बार साफ-सुथरे आँगन की चक-चक करती हुई उस धरती पर 'माहेश्वर झा', 'माहेश्वर झा' लिखता-मिटाता था । अब मार-पीट की बात कान में पड़ी तो एक नजर से भाभी के मुँह की ओर देख लिया, फिर बोला—सबकुछ करना होता है मौके पर रानीजी !

—ऊँ ?

—खेल नही है भाभी, एक लडकी के जीवन का सवाल है ।

भाभी चुप रह गई, अपने आवेग को उसने रोक लिया । समस्या की गम्भीरता पर ध्यान जाते ही उसका चेहरा भारी हो उठा । गोदी का वच्चा सो चुका था । उठकर उसे सुलाने चली घर की ओर तो माहे से

१. पाँव ।

उसने पूछ लिया—पानी पियोगे बबुआ ?

—पिला दो !

—अच्छा !

माहे सोचता रहा, आज इसको भी नींद नहीं आयेगी। हर बात में भाभी हमारी तरफदारी करती है। हमारे खिलाफ जो भी शिगूफा छूटता है, उसमें यह हमारी ओर से वकालत करती है। हमें बढ़िया से बढ़िया सलाह देती है···और मोह तो देखो ! मार-पीट मत करना ! बिसेसरी की भलाई हम जितनी चाहते हैं उससे रत्ती-भर भी कम भाभी नहीं चाहती होगी, बल्कि अधिक ही कह लो। मगर हम किसी मुसीबत में पड़ जायें, यह भी इसे बर्दाश्त नहीं है···नहीं भाभी, हम नाहक मार-पीट नहीं करेंगे।

मकाभक करते हुए फुलही गिलास में लाकर भाभी ने पानी दिया माहे को। वह गट-गट करके एक ही साँस में सारा खींच ले गया भीतर। आँखें मगर भाभी के चेहरे पर नाचती रही थी।

भाभी कोई ऐसी सुन्दरी नहीं थी कि लाख में एक हो। हजार में एक शायद रही हो वह। लेकिन थी दिलेर और दिलदार, इस दृष्टि से वह अवश्य ही लाख में एक रही होगी। बूलो की तो खैर वह अपनी ही थी, दिगम्बर और माहेश्वर और जो भी कोई उसके सम्पर्क में थे, सभी का मुँह टूटता था नेपाल तराई की इस किसान-कन्या की सराहना करते ! किसी दूसरे व्यक्ति की प्रशंसा से उनका जी भले अघा उठता हो, भाभी के गुणगान से कभी उनका मन नहीं भरा ! ऐसी थी बूलो के भाई की यह घरवाली !

छः

नौ-दस साल की लड़की आई और बिसेसरी के पास जाकर बैठ गई। उसके बाल सँवारे जा चुके थे, चोटी गुँथ चुकी थी, आँखों में काजल लग चुका था।

गहने रामेसरी के अपने कम ही थे। अपनी हँसली दो साल पहले ही उसने बेटी के गले में डाल दी थी। पति की दी हुई नथ थी, कंगन

थे और करघनी थी। सो, आज सन्दूकजी से निकालकर—खटाई से मांज-मूंजकर, सुखा-पोंछकर रखे हुए थी। मझली वहू से चन्द्रहार ले आई थी, छोटी वहू से झुमके। गले में डालने की चाँदी की चकतियाँ बड़ी बहू खुद ही निकाल लाई थी।

रामेसरी ने एक-एक कर बिसेसरी को गहने पहनाए। लड़की को बार-बार प्यास लगती थी, उसका मन परेशान था। दिल बुरी तरह धड़क रहा था। आज सभी उसे एक अजीब नजर से देख रहे थे। अँधेरे घर में साँप ही साँप! उसे बड़ा ही डर लग रहा था, अगले क्षणों में क्या होनेवाला है···दूल्हे के बारे में सही बातें बिसेसरी से अच्छी तरह छिपा रखी गई थीं। वह तो खैर बूलो की भाभी से सवेरे ही थोड़ा कुछ बेचारी को मालूम हुआ था। चतुरा चौधरी के पीछे पिछले तीन दिनों से पण्डित पड़ा था, रिश्ते की बात पक्की-सी हो चुकी थी और कल रात को जो लोग सौराठ से लौट आए थे, उनकी मेहरबानी से यह समाचार गाँव के वायुमण्डल मे तभी से मँडरा रहा था। पहला आदमी खजन थी जिसके मुँह से बिसेसरी को यह बात मालूम हुई और तब बेचारी को जैसे साँप सूँघ गया! घायल हिरनी-सी दौड़कर वह बूलो के घर गई और भाभी की गोद मे बेसुध गिर पड़ी। अपनी नौकरानी भेजकर भाभी ने फौरन दिगम्बर और माहे को बुलवाया, बूलो मौजूद था ही। बिसेसरी उस गँवई 'बमपार्टी' की अनियमित सदस्या थी, पिछले छः महीने से। वे एक-दूसरे की दिक्कतों से पूर्ण परिचित थे। खेल-मनोरंजन, सोच-विचार, सुख-दुःख···कभी-कभी नाश्ता-पानी भी—बहुत-सी बातों में वे परस्पर आत्मीय बन चुके थे। आज दुपहर तक माहे और दिगम्बर भाभी के पास बैठे थे, यह तय करके ही उठे थे कि बिसेसरी का ब्याह उस बूढे से कदापि न होने देंगे। बिसेसरी गोकि पहले ही वहाँ से उठ आई थी मगर मन उसका अच्छी तरह मान गया था कि मेरा गला ये लोग नही कटने देंगे···लेकिन यह तो दुपहर की बात हुई न? पहर-भर रात बीत गई है, दूल्हे का सर-सामान और उसके आदमी बाहर बैठके मे आकर जम गये हैं। नाना स्वयं अपने हाथों 'कन्यादान' करेंगे, सो, नहा आये है और सन्ध्याकालीन पूजा-पाठ से निबट रहे है। कुलदेवता के समक्ष

मंगलगान आरम्भ हो चुका है, बड़ी-बूढी औरतें और नयी-नवेली बहू-बेटियाँ रस ले-लेकर गा रही हैं। नानी स्वयं पूड़ियाँ छानने बैठी है, माँ साधारण रसोई मे। मुझे सजा-सँवारकर मौके के लिए तैयार कर लिया गया है—अब और मेरे सर्वनाश में क्या बाकी बचा है ? वह देखो, नाई हवन की लकड़ियाँ ला रहा है, कुम्हार हाथी-पातिल-पुरहड़[1] और सकोरे वगैरह ले आया है। मझली मामी आँगन के बीचोबीच ब्याह के लिए जगह लीप रही है। छोटी मामी कनेर के पीले फूलों की माला गूँथ रही है। बडी मामी का सारा ध्यान अपने बच्चों को धडिया-धोती, अंगा-टोपी और आंगी-घघरा पहनाने में लगा हुआ है और दुलहिन यहाँ झख मार रही है ! हे भगवान, कैसे मैं यह जहर पियूँगी ?

रह-रहकर बिसेसरी के मन में यही तरंग उठती थी कि कुएँ मे जाकर कूद पडे···बीच आँगन मे खड़ी होकर चिल्ला पडे—इससे अच्छा यही होगा कि भगवती दुर्गा की पीड़ी पर मेरी बलि चढा दो···

उसे भाभी, माहे, दिगम्बर और बूलो आदि याद आये—वे बैठे नही होंगे; कुछ न कुछ मेरे लिए वह जरूर करेंगे। घुप अँधेरे मे आशा की एक झलक बिसेसरी को दिखाई पड़ी और कमर सीधी करके एकाएक वह खड़ी हो गई। गहनों के झंकार से घर का वह मौन टूट गया।

वह छोटी लडकी जो अभी तक चुपचाप बैठी थी, चट से उठकर आगे बढी। उसने इधर-उधर देखा, वहाँ कोई नही था। सब आँगन या दूसरे घरो मे कुछ न कुछ कर रही थी। इस कोठरी मे बिसेसरी को छोड़कर वह खुद ही थी।

मौका पाकर उसने बिसेसरी के हाथ मे एक पुर्जा गोज[2] दी और चली गई।

इस घर में एक ढिबरी जल रही थी, लालटेन सभी बाहर जगमगा

१. शादी के वक्त मिट्टी का पक्का हाथी सामने रखा रहता है। पातिल वह हँड़िया है जिसके अन्दर दिया जलाकर, ऊपर ढक्कन से आधा ढँका रहता है। पुरहड़ (घट)—मंगलकलश।

रहे थे।

बिसेसरी निकलकर बाहर बरामदे तक गई और झाँककर देखा, सब अपने-अपने काम मे लगी थी। फिर वह अन्दर आ गई। सन्दूक की आड में ले जाकर कोने के एक आले मे ढिबरी रख दी, पुर्जी को खोलकर बांचना शुरू किया।

"प्रिय बिसेसरी,

घबडाना नहीं। हमने तुमको जो वचन दिया; उसे पूरी तरह हम निभाएँगे। तुम जरा भी मत घबड़ाओ। तुम्हारी मदद की अभी तो कोई जरूरत नहीं है, आगे भी जरूरत नही पडेगी—ऐसी आशा है। सब से बडी सहायता तुम हम लोगों की यही कर सकती हो कि अपने दिल को कडा किये रहना।—१३/६/५० दिगम्बर"

भरोसे की चन्द पंक्तियां बिसेसरी को सकट-मोचन का अमोघ आश्वासन प्रतीत हुई। एक, दो, तीन, चार जाने कै बार वह उन पक्तियों को आदि से अन्त तक पढ़ गई, फिर भी सन्तोष नही हुआ। देवी-देवता का फूल अन्दर डालकर लोग बडे जतन से जन्तर मढवाते हैं तांबे का, चाँदी का, सोने का, अष्टधातु का; वे उसे बाँह मे, गले मे, कमर मे बाँधते हैं कि हमेशा शरीर से लगा रहे। लेकिन बिसेसरी को इतने-भर से कहाँ तसल्ली होती ? उसका वश चलता तो अभी छाती चीरकर इस पुर्जी को वह अन्त करण मे सँभाल रखती !

पिछले आठ-दस घण्टो मे अपने इन बन्धुओं के मन की एक भी बात बिसेसरी तक नही पहुँची थी, पहुँचता रहा बस एक यही सुसमाचार कि रानी बनेगी बीसो—सोने के गहनो से लद जायेगी, हाथी पर चढके गौरी को पूजेगी !

अपने अन्दर आज उसे सचमुच नया खून महसूस हुआ। एक प्रकार की नयी चेतना से उसके अंग-अंग मे फुर्ती दौडने लगी—तो वह अकेली नही है। दिगम्बर और माहे, भाभी और बूलो गाल ही नही बजाते थे सिरिफ, वे कुछ कर भी सकते है।

मन हुआ कि एक-एक करके सब गहने उतार डाले और चुपके से भाग जाय। पिछवाडे से दाई तरफ माहे की बाँसो की बाडी है, आगे

खेत शुरू होते हैं। काफी दूर तक गन्ने की खेती है··· मगर इस तरह भागकर वह जायेगी कहाँ ?

बिसेसरी का दिमाग फिर चकराने लगा।

भीत के सहारे वह धम्म से बैठी तो कागज का वही टुकडा टुड्डी से छू गया। वह अब तक उसके हाथ में ही था। पुर्जी के स्पर्शमात्र से बिसेसरी फिर सँभल गई।

ढिबरी को नीचे किये बिना ही वह पुर्जी को फिर बाँचने लगी, मन ही मन···

अपने को उसने फटकारा—घबडाती क्यों है ? सोचने का सारा ठेका तूने ही ले रखा है क्या ?

तब उसे ध्यान आया कि पेंसिल से चार आखर घसीटकर भाभी को भेजवा देती ! लेकिन, अब वक्त भी कहाँ है ? और ले भी कौन जायेगा आखिर !

कि इतने में एकाएक आँगन की हलचल कई गुनी बढ गई !

यह क्या हुआ ?

आ तो नहीं गया वह कसाई ?

हे भगवान !

सचमुच यही बात थी। घोड़े की हिनहिनाहट ने बिसेसरी के दिल की धड़कन को और बढ़ा दिया। वह न उठी, न हिली। बाईं हथेली पर टुड्डी टेके, रुक-रुककर चलती साँसों से घबड़ाहट को और परे धकेलने की कड़ी कोशिश मे वह लग गई।

बाहर बैठक मे, कई तख्तपोशों पर कम्बल और जाजिम बिछे थे। छोटी चौकी पर ऊन का खूबसूरत आसन बिछा था। पास ही बड़ा लोटा, पानी भरा ताँबे का घडा और पीतल की अढ़िया धरी थी।

दूल्हा बाबू के पैर धुलवाए गये, उन्हें भली-भाँति पोंछवाया गया। इस ड्यूटी पर बूढ़े छकौडी खवास तैनात थे।

दूल्हा के बैठ चुकने पर घरवाले और गाँववाले भी बैठ गये। सब चुप थे, एकटक दूल्हे के चेहरे की तरफ देख रहे थे।

उमर उसकी साठ से कम की तो क्या होगी, दो-एक वर्ष अधिक

ही होगी। चेहरा रोबीला था। कान छोटे-छोटे, आँखें बादामी। नाक न खड़ी, न पड़ी। होंठ पतले। बाल पके हुए। मूँछें बारीकी से छँटी हुई, दाढी साफ। गालों मे गढ़े पड गये थे। सिल्क का कुर्ता, टसर की पगडी, रेसमी चादर। सिकिया कोर की फस्ट क्लास धोती। हिना और केवडे की तेज खुसबू से लोगों की नाक भर-भर उठती थी। गेहुआँ कपार पर गीले सेँदूर का गोल टीका पेट्रोमैक्स की तेज रोशनी मे बड़ा ही भला लग रहा था।

पण्डित मय पाँचों पूत आगन्तुक की अभ्यर्थना मे हाजिर थे।

बाकी लोगों में मुखियाजी थे, फतूरी ठाकुर थे, परमानन्द पाठक थे। जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कण्ठ, श्रीनारायण प्रतिहस्त, गाँव के स्कूल के चारों मास्टर, संस्कृत पाठशाला के जोतशीजी और बीसियों दूसरे लोग भी मौजूद थे।

रात पहर-डेढ-पहर बीत चुकी थी। दस बया, एगारह का अमल होगा। उमस काफी थी। पंखों के अभाव में बड़े-सयाने अँगौछी झुला-झुलाकर हवा ले रहे थे, लडके हाथ झुला-झुलाकर। पेट्रोमैक्स ने गर्मी की मात्रा कई गुना बढ़ा दी थी। कीडों-फतिगों को झुलस-झुलसकर मरने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ था।

चर्चा चली कि पाकिस्तान जोर मार रहा है, काश्मीर में फिर घमासान मचेगा···बात का छोर काग्रेसी शासन से छू गया तो खौखा पण्डित बीच मे ही टप-से बोले—अंग्रेज बहादुर ही अच्छे! इनसे तो हम भर पाये···बिना राजा के कहीं कोई राज चला है?

छकौड़ी खबास बैठक से हटकर अँगनाई में बैठा था। तमाकू खोंट रहा था, खैनी मलने के लिए। वह बोला—अग्रेज लहू पीता था, ई लोग हड्डी चबाते हैं पण्डितजी!

इस पर मुखियाजी कड़वाहट से भर गये, कहा—धन्य काग्रेस सरकार कि हमारी-तुम्हारी इज्जत-आबरू बची हुई है! दूसरे की हुकूमत होती तो आजकल केला-थम्भ की छाल इसी भाव से खरीदते लोग और सो भी कहाँ मिलती?

फतूरी ठाकुर ठीक इसी वक्त कपड़ा कंट्रोल की शिकायत करने

लगा—जवाहिरलाल का भला इसमे क्या कसूर है ! अफसर साले घूस खाते है, दुकानदार उनको चाँदी मुँघा देता है बस···

दूल्हा भला क्यों पीछे रहने लगा ? बोला—सरकार मलेच्छों के प्रभाव मे है, हम हिन्दू अगर आपसी भेद-भाव भूलकर एक हो जायें तो कल ही रामराज स्थापित हो जाय।

"दैहिक दैविक भौतिक तापा
रामराज काहुहि नहि व्यापा।"

बाबा तुलसीदास की बात एकता और धर्म के बिना कैसे अमल में आयेगी !

कि बूँदाबाँदी शुरू हुई।

बादल उमड-घुमडकर तो नही आये थे। दो-चार खण्डमेघ आकाश में मटरगश्ती कर रहे थे, अब ठीक माथे पर पहुँचकर अलसा गये तो ढीले पड़ने लगे। बूँदों की पटापट सुनकर बैठक में बैठे हुओं के कान गुदगुदा उठे, देह में हल्की सिहरन हुई।

छकौडी ने जल्दी में सुरती ठोकते हुए कहा—देखना हो इन्नर महाराज, सुभ काज मे भडठी[1] मत डालना !

फिर उसे कुछ याद आया—

—मालिक का घोड़ा कहाँ है पण्डितजी ?

—अरे हाँ, घोडा कहाँ है बच्चन ?

पेट्रोमैक्स की लाइट जहाँ सबसे अधिक पड रही थी वही बैठकर बच्चन जनेऊ मे गाँठ दे रहा था, सामने चँगेरी में तीन-चार जोड़े जनेऊ पड़े थे—पीले रङ्ग के। और तानियों मे गाँठ पड़ चुकी थी, यही एक तानी गँठियाने को रह गई थी। एक तानी मे इतना लम्बा धागा रहता है कि तीन फेरों की जनेऊ होती है, आमतौर पर लोग छः फेरो की दो जनेऊ धारण किये रहते हैं कि एक-आध धागा कही टूट-टाट गया तो तन-मन की शुद्धि बनी रहेगी। सो, आज बियाह-संस्कार के समय कई जनेउओं की जरूरत थी। बच्चन जल्दी-जल्दी जनेऊ गठिया रहे

१ विघ्न, रुकावट।

थे। गाँठ डालकर जनेऊ को उन्होंने समेटा-गोलियाया और बोले—"घोड़ा तो पोखर पर है, पीपल की जड से बँधा है। दो टोकरे हरी घास डाल दी गई थी उसके आगे, खा-वाकर आराम कर रहा होगा बैठके।"

पण्डित ने यह सुना तो उनका मन थिर हुआ, हल्की-सी हुँकारी भर-कर रह गये।

तब तक बूँदा-बाँदी खतम हो चुकी थी।

छकौड़ी ने तैयार सुर्तीवाला दाहिना हाथ सलीके से आगे बढ़ाकर दूल्हे के भांजा से कहा—"लिया जाय हजूर!"

उसने डबल जूम तमाकू छकौडी की तलहथी पर से उठाकर निचले होठ और दाँतों के दर्म्यानी गढ्ढे के हवाले किया और बैठने की मुद्रा बदल ली। पालथी मारकर बैठा था सो अब चुक्कीमाली[1] हो गया।

खवास ने फतूरी ठाकुर को भी सुर्ती दी, बल्कि हाथ बढ़ाके लेने को कहा।

रही-सही खैनी उसने आप फांक ली तो बरामदे से नीचे उतरकर अँगनाई मे जीमड के अधबीज़ खूँटे से पीठ टिकाकर आ बैठा···

कटी-टूटी बातें पंखहीन तितलियो-सी बैठके मे अब भी रेंग-रेंगकर चल ही रही थी।

छोटी जात का एक छोकड़ा दूल्हे के पास खडा था और किनारी-दार बडा पंखा चल रहा था, पुराना और पीला पड गया हुआ ताड़ के पोढ पत्ते का पंखा—लम्बी-मोटी डण्ठलवाला।

बीच ही में मुखिया ने मँगवा लिया था, दादे के अमल का अपना पंखा। गाँव की इज्जत को ऊँची बनाये रखने में मुखिया अपना-पराया सब भूल जाता था!

कितना बड़ा मातबर आदमी आज नौगछिया आया था!

फिर भी जाने क्या बात थी कि दूल्हा रह-रहकर कछमछा उठता था। वह इधर-उधर नजर घुमाकर फिर-फिर अपनी बाईं कलाई उठाता

१. घुटनों को पीठ के सहारे अँगोछी से तनिक ढीला-ढीला सा बाँध लेते है, इससे बिना उठे भी अपने-आप एक सहारा हो जाता है।

था।

कै बज गये ?

पौने बारह !

देर क्यों हो रही है ?

कुछ नहीं, दूसरा मुहूर्त पौने एक बजे पडता है जो कि साढ़े दस वाले से कहीं तगडा और महाशुभ है।

अच्छा, तो यह बात है !

मगर बडा ही विलम्ब होगा।

हटाओ भी, मंगलमय परिणामों के लिए हमारे पूर्वज कठोर से कठोरतर साधना कर गये हैं, हम रात-भर जाग भी नहीं सकते ? छि: !

दूल्हे की कमर सीधी हो गयी, वह तनकर बैठा

सात

बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड पुजवाने गयी थीं।

बाहर बैठक मे तो रौनक थी, लेकिन आँगन मानो खाली था। रामेसरी और मझली बहू, बस दो ही जने रह गये थे घर मे। बाकी सब—बच्चे तक—पेडपूजन के निमित्त जो शोभायात्रा निकली थी अपने आँगन से, उसी मे शामिल होकर बाहर निकल गये थे। टोल[1] की अपनी पुरानी कुतिया तक उस जुलूस मे साथ गई थी···वह बिल्कुल स्वस्थ रही हो ऐसी बात नहीं, तो भी बेचारी साथ गई थी—बारह साल के पिछले जीवन मे उसका बिसेसरी से अटूट सखीभाव चला आ रहा था, आज ही भला वह क्यों पीछे रह जाती ?

रामेसरी और मझली बहू अपने कामो मे मशगूल थीं।

बैठक के कोने पर एक छोटा दरवाजा था, वह अन्दर घर की ओर खुलता था। यों तो समूचा ही बैठका भीतरी मकान का बाहरी हिस्सा था, लेकिन था वह बिल्कुल स्वतन्त्र। बैठके के दोनों छोर क्या थे, कमरे

१. मुहल्ला।

थे दो छोटे-छोटे। उन्ही मे से एक कोठरी का लगाव अन्दर हवेली से था।

रामेसरी झांक-झांककर दूल्हे का चेहरा-मोहरा देख चुकी थी। वह बहुत उदास थी। शकल-सूरत तो आदमी की कोई उतनी बुरी नहीं थी, हाँ, पकी उमर और तीन-चौथाई सफेद बाल बेचारे को बिसेसरी के अयोग्य घोषित कर रहे थे।

अभी वह वर-वधू के लिए तस्मै[1] तैयार कर रही थी।

साधारण रसोई से अलग, मिट्टी के ताजे चूल्हे पर पीतल का मामूली तसला चढ़ा था। दो चैलियाँ, फटे-पुराने बाँस की फट्टी। मजे की आँच थी। खौलते दूध में चावल उबल रहे थे।

पास ही रामेसरी बैठी थी। आधी पल्थी, दूसरा घुटना उठा हुआ। दाहिने हाथ में पीतल की कलछी, बाईं हथेली पर ठुड्डी टिकी थी।

सामने की आँच की ओर एकटक निगाह।

—किस गुनधुन में पड़ी हो दइयनि ?

मझली बहू के स्वर ने रामेसरी की अन्यमनस्कता से टक्कर ली, फल कुछ नही निकला। वह सूनेपन मे छितरा गया।

मझली बहू नजदीक आ गई।

ननद की आँखों मे झाँककर देखा।

अब भी रामेसरी खोई ही रही, मन की समूची शक्ति जाने किस झोंझ मे उलझ गई थी कहाँ जाकर ! शरीरमात्र वहाँ पडा था।

तसले का गला खौलते दूध के फेन से लबालब भर आया। मझली बहू रामेसरी के हाथ से कलछी लेकर उस ओर लपकी और खीर घोटने लगी।

मझली बहू भी दूल्हा देखकर झँवा गई थी। यह उसकी कल्पना से परे की बात थी कि बीसो जैसी सोनछड़ी को बूढ़े पीपल की डाल मे लटका दिया जायेगा। वह स्वयं एक गरीब ब्राह्मण की बेटी थी। उसका बाप ईमानदार और निर्लोभी पण्डित था। पूर्वजों की अर्जित जमीन थी, पाँच बीघा। दो हट्टे-कट्टे बेटे थे। लग-भिडकर वे धरती माता की

१. खीर।

उपासना करते थे। लडकियाँ एक नही, तीन थी। मुदा उनमें से एक की भी शादी से उस बाभन ने रुपैया नहीं बनाया। अपनी ही तरह के मामूली गृहस्थी के घर उसे पसन्द आये।

मझली बहू की आँखें छलछला आईं, गला भारी हो गया—दइयनि ?

उसने रामेसरी के कन्धे पकड लिये, उन्हें हल्का झकोरा दिया—एक बार, दो बार, और तीसरी दफे भी।

रामेसरी की चेतना लौट आई। वह सँभलकर बैठी।

—हो गया फुलकुम्मरि ?

—हाँ, डाला मज गया।

—देखो न, खीर अब भी नही हुई है!

—वाह! हो गया, मैंने देख लिया।

—सच ?

—तो क्या झूठ ?

—ऊँ!

—तुम चलो दइयनि, आँगन मे चलकर बैठो। मैं आँच हटाकर अभी आई।

रामेसरी उठी और जाकर बीच आँगन में खडी हुई।

—अरे, बूँदें पडी थी!

अधिक नही, दस ही पाँच बूँदें पडी हैं, यह जानकर रामेसरी को सन्तोष हुआ।

लिपे-पुते आँगन मे सफेद अइपन[1] चक-चक कर रहा था, गाड़ी का चाका जैसी गोल और बड़ी परिधि मे कुई के फूलो की माला आँकी गई थी। मध्य मे पोडश-दल कमल अंकित था।

अइपन पर ध्यान जाते ही रामेसरी को अपनी माँ के बारे में अभिमान महसूस हुआ—मेरी मइया कैसी गुनमन्ती है! लोढा-सिल और चक्की-ऊखल तो सब चला लेती हैं, यह विद्या सबके बस की नही।

१. भिगोये हुए चावल को पीसकर और घोलकर अंगुलियो से अंकित मांगलिक चित्रण, आलिम्पन।

सारी तैयारी पूरी हो चुकी है—रामेसरी अपने-आप बिदबिदाई। दूल्हे की शक्ल-सूरत न याद आ जाय, इसी से वह कुछ न कुछ बुदबुदाती रही। उसका मन इस अप्रिय स्मृति से बेहद कतरा रहा था।

—जो होना है, जल्दी हो जाय !

—तो अब देर ही क्या है ?

—ऐं भइयो, अभी क्या हुआ !

— नाहक ही मत घबड़ा तू !

—कहाँ घबड़ाती हूँ···

कमर सीधी करके खड़ी हो गई रामेसरी, जैसे ट्रेनिंग के समय रँग-रुट को हवलदार ने कह दिया हो—हो शि या र !

घर से मझली बहू निकल आई।

पास आकर ननद से उसने कहा—दइयनि, और सब तो ठीक है, मेघों का विश्वास नहीं।

—नहीं, अभी बरखा-तरखा नहीं होगी।

—और अभी-अभी जो बूँदें पड़ गईं सो ?

—बस, इतना-भर बरसना था।

आकाश की ओर दाहिना हाथ उठाकर रामेसरी ने कहा—दो-तीन टुकड़े बादलों के वह देखो पच्छिम तरफ भाग चुके है। पछिया हवा होती तो तुम्हारा डर ठीक था, यह तो पुरवइया सिहक रही है···

—भगवान करें !

इसी बीच बाहर, बैठके की ओर से दुतर्फा आवाज आने लगी। स्वर साधारण नहीं था, उसमें झगड़े की धसक थी। ऐसी कि मेड़ के दो ओर खड़े होकर दो खेतिहर आधा बित्ता जमीन के लिए तकरार कर रहे हों आपस में।

स्वर की तिखाई एकाएक बढ़ गई। एक आवाज थी खोखा पण्डित की, दूसरी माहे की।

दूसरी आवाज में तिखाई उतनी नहीं थी जितनी कि दृढ़ता···

—फुलकुम्मरि, तुम इधर देखती रहो। मैं तनिक उधर देखूँ।

रामेसरी दौड़कर पछवरिया घर के ओसारे में आई और दाहिनी

तरफ से होकर उस कोठरी में घुसी जिसका अगला दरवाजा बैठके की ओर खुला था। उसकी कोंढ-करेज केले के नये पत्ते की तरह काँपने लगी थी···क्या होनेवाला है !

रामेसरी छाती पर दोनों हाथ रखकर किवाडी की आड़ में खड़ी हो गई। झाँककर देखने का साहस उसमें बाकी नहीं था। खतरे की प्रतीक्षा मे निश्चेष्ट खड़ी रही वह।

"बाप चूल्हा फूंकते-फूंकते मर गया और तू हमारे घर में आग लगाने आया है ?"—माहे की ओर हाथ बढा-बढाकर खोखा पण्डित चिल्ला रहे थे। वह चुप था, निगाहें मगर दूल्हे पर गड़ी हुई थी।

"जाता है कि नहीं यहाँ से सूअर कहीं का !"—पण्डित फिर चिकरे[1]।

माहे ने मजबूती से कहा—मैं जाने के लिए नहीं आया हूँ पण्डित बाबा, आपसे तो मैंने कुछ कहा भी नहीं है···

—आग तो लगा दी है, कहेगा क्या !

—मुझे आपसे कुछ मतलब नहीं है···

माहे ने दूल्हे के भांजे को सम्बोधित किया—आप तो, सुना है, पढे-लिखे हैं। क्यों न अपने मामा को समझाते है ? साठ साल की उमर, पाँच-पाँच जवान बेटों के बाप···छी-छी-छी-छी ?

खोखा पण्डित ने यह सुनते ही माहे पर अपनी एक खडाऊँ फेंकी, वह वार को बचा गया। जाकर जरा अलग खड़ा हुआ और मुस्कुराता रहा।

बच्चन अपने बाप को सँभालने मे लगा था। दूसरे बेटे किंकर्त्तव्य-विमूढ खड़े थे। पण्डित दाँत पीस-पीसकर मुँह टेढ़ा कर-करके अनाप-सनाप अपना बके जा रहे थे; दाहिने हाथ की मुष्टिमुद्रा बना-बनाकर और बाया हाथ से उसकी हत्थड पकड़-पकड़के वह माहे को कह रहे थे—केला लेगा, केला ? भोस और बाडनर[2] ? अपनी माँ के···

उधर फतूरी और मुखिया दूल्हे से बातें कर रहे थे। उसका

१. चीत्कार किया, चिल्लाये। २. मोटे-मोटे केलों की दो जालियाँ।

भगिना[1] भी उन्हीं बातों में अपना कानमुंह भिड़ाये हुए था।

पण्डित का चौथा लड़का—टुनाई—इस साल मैट्रिक में था। उसकी आयु बिसेसरी से डेढ साल बड़ी थी। उसका भी मन इस प्रकार के दूल्हे के पक्ष में नही था।

माहे का रुख देखकर टुनाई को यह समझते देर नही लगी कि गाँव-भर के नौजवान इस ब्याह के खिलाफ हैं, यह विरोधप्रदर्शन न तो अकेले माहेश्वर की ओर से है और न असंगठित ही है।

टुनाई स्वयं भी समझदार था और बहुत-सी बातो में वह नवयुवकों का साथ देता। पिता की संकीर्ण मनोवृत्ति का शिकार वह खुद भी कई बार हो चुका था, बहनों की दुर्दशा उसे रह-रहकर कोंचती थी।

इस समय भाइयों को चुप पाकर टुनाई ने समझ लिया कि सिवाय बाबू (पिता) के यह दूल्हा किसी को पसन्द नही है; माँ और बहन डर के मारे कभी कुछ बोलती नही; जो मन मे आता है बाबूजी वही करते हैं···देखो न, माहे बेचारा नाहक इनकी गालियाँ सुन रहा है, क्या बुरा कहा है उसने? दूल्हे की क्या कमी है, एक नहीं एकइस मिलेगा···

वह चट से माहे के पास गया।

दोनों अलग जाकर सिंदुआर की झाड़ियों की आड़ में फुसफुसाने लगे।

—अब क्या होगा?

—वापस जायेगा बुड्ढा, और क्या होगा?

—लोग क्या कहेगे?

—और, ब्याह हो जाने पर दुनिया क्या कहेगी?

·········

—एक काम करोगे?

—क्या?

१. भांजा।

—अभी बिसेसरी गई है आम-महुआ के पेड़ पूजने, लौट आये तो कहना : खूब पानी पी ले और मुंह में उंगली डाल-डालके कै करे···

—फिर ?

—फिर तुम बैठके में आकर सबके सामने यह खबर सुनाओ कि बिसेसरी की तबियत एकाएक खराब हो गई है, उसे तीन कै और दो दस्त हुए हैं···

—अच्छा।

अब टुनाई ने माहे के बाएँ कन्धे पर अपना दाहिना हाथ धर दिया और पूछा—तुम अब क्या करोगे ?

देख लेना—अपने कन्धे पर से उसका हाथ हटाकर माहे बोला।

टुनाई इधर आया, माहे उधर गया—पोखर की तरफ।

आठ

रात अधिक हो गई थी।

बहुतेरे दूल्हा के पास तनिक देर बैठकर चले गये थे कि सेंथ मे सेंदुर पड़ेगी और फेरे पड़ेंगे तब आयेंगे और दूल्हा-दुल्हिन को आशीर्वाद दे जाएंगे।

फतूरी, मुखिया और संस्कृत पाठशाला के जोतखीजी[1] और छकौड़ी खवास—बस, गाँव का और कोई नही था। जो थे सो सब घरवैया ही थे, पण्डित और उनके बेटे। बाकी, दूल्हा बनने का मंसूवा बाँधकर जो आये हुए थे वह बाबू श्री चतुरा चौधरी तो विराजमान थे ही, भगिना भी था उनका। अलग, फटी दरी पर अधेड़ उमर का टहलुआ[2] था बैठा हुआ। उसकी आँखें अपनी नींद-लदी पलको से जूझ रही थीं।

ऐसे ही समय माहेश्वर आकर महफिल में मानो बम फोड़ गया था, धुआँ से सबका दिमाग भारी और बेकाम हुआ जा रहा था। घायल दो जने हुए थे।

भावी दूल्हा बुरी तरह घायल हुआ !

१. जोतसी, ज्योतिषाचार्य। २. सेवक, नौकर।

खोंखा पण्डित का हाल तो और भी खराब था।

मारी-मारी रँधी-रुँधी बातें होती रहीं।

मुखिया बोला—अपने गाँव के छोकड़ों का मिजाज सनक गया है, इनका इलाज होना चाहिए फतूरी काका!

मुँह की खैनी थुकर[1] के फतूरी ने कहा—चारों चरन दरअसल इसी नौगछिया बस्ती पर छा गया है···

मगर जोतखीजी ने जो बात कही इस पर, उससे सवाल का रुख ही पलट गया।

गेहुँआ खाल से मढ़ा हाड़ों का कमजोर ढाँचा। फाँक-सी आँखें। नुकीली नाक। बड़े-बड़े कान। पतली मूँछ, पिचके गाल। पहनावे में मामूली धोती, कन्धे पर गमछा चारखाना।

भीत से पीठ टिकाकर बैठे थे वह।

उन्होंने कहा—अगहन में ब्याह के अच्छे दिन पड़ते हैं, लगन के वैसे बढ़िया योग इधर कई वर्षों में नहीं आये···

फतूरी ठाकुर छूटते ही बोले—अगहन! आ हा! मेरा ब्याह अगहन में ही हुआ था, हम दोनों कभी बीमार नहीं पड़े।

पण्डित को धर-पकड़के लड़के अन्दर ले जा चुके थे। उधर से फिर कौन क्या बोलता! दूल्हे के भांजे को बातचीत के इस नये रुख से आज का लगन टालने की गन्ध आई तो झट से उसने कहा—नहीं, अभीवाला लगन भी बेजोड़ है।

—होगा!

जोतखी नकियाकर बोले।

फतूरी का मन कर रहा था कि प्रधान पाहुने की चुप्पी टूटे। लेकिन वह तो एकदम हतप्रभ और मौन बैठा था, पालथी पर केहुनी और बँधी मुट्ठी पर ठुड्डी टिकी हुई थी। दृष्टि सामने जीमड़ के खूँटे पर।

कुछ देर तक फिर वातावरण गम्भीर हो गया। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। बीच-बीच में गमछे से पीठ झाँटने की आवाज। मेंढ़ोमॆंसा की

१. थूः करके, फेंककर।

लाइट के कारण इधर-उधर उड़नेवाले कीड़े पीठ पर बैठते थे और गमछे की चोट खाकर सद्गति प्राप्त करते थे।

दूल्हे के लिए जो खास पंखा आया था, वह भी अब आराम कर रहा था। टट्टी फिरने जाने का बहाना बनाकर पंखा झलनेवाला छोकरा कब का जा चुका था।

इस तरह महफिल पर मुर्दनी छा रही थी।

वह तो मुखियाजी मुस्तैद थे, नहीं तो हवा के अभाव में पेट्रोमैक्स भी अपना काम तमाम कर चुका होता।

छकौड़ी अँगनाई में, जीमड़ के उसी खूँटे से पीठ टिकाये झपकियाँ ले रहा था।

—इधर आइए मुखिया काका!

अन्दर से निकलकर टुनाई ने जोर से पुकारा तो मुखिया चिहुँक उठा—क्या बात है हो?

—बिसेसरी के दो दस्त हुए हैं और तीन बार कै!

—अब क्या हाल है?

—हाल क्या पूछते है, दाँती[1] लग गई!

—जाओ, हमारे घर से पुदीना का अरक और अमरितधारा लेते आओ।

टुनाई मुखिया के मकान की ओर गया।

फतूरी और मुखिया धड़धड़ाकर अन्दर घुसे।

दूल्हा का धीरज अब जवाब दे गया। वह तख्तपोश पर से उठा। नीचे अँगनाई में आकर चहलकदमी करने लगा। उसे नौ सौ रुपये डूबने की उतनी पर्वाह नहीं थी जितनी कि बे-आबरू होकर वापस जाने की। थोड़ी देर वह अकेले टहलता रहा, फिर भगिने को बुला लिया।

दोनों फुस-फुस करते हुए चहलकदमी करते रहे।

छकौड़ी भी भीतर चला गया था, बिसेसरी को देखने।

चतुरा चौधरी का नौकर अपनी उसी तरह ऊँघता रहा। मालिक

१. मूर्च्छा, बेहोशी जिसमें दाँत पर दाँत बैठ जाते हैं।

किस मुसीबत में यहाँ आके फँसे है, इसका ज्ञान उस अलबौक को था ?

नहीं था।

नहीं था क्योंकि चौधरी का अपना आदमी किसी फौजदारी मामले का हाजती कैदी था आजकल, लहेरियासराय जेल में बन्द। जरूरत थी तो मालिक इसी मतसुन्न[1] को पकड़ लाये थे। तीन बार कहोगे तो बात इसके माथे मे घुसेगी। डेढ-सेर चावल का भात दोनों साँझ[2] ठूँसेगा, कुम्भकरन की तरह सोएगा···लाद-बोझ दो तो पक्का ढाई मन बोझा ढोएगा, चार लात लगाओगे तो पीठ झाड़कर और दाँत-मुँह चियारकर चला जायेगा; फिर बुलाओगे तो बिना चीं-चपड़ के वापस आएगा !

नाम क्या है ?

बड़ा अच्छा नाम है, ढहलेलवा[3] !

इससे बढ़िया नाम उसका और होगा ही क्या ?

मालिक का कण्ठ सूख रहा था।

तीन बार आवाज देने पर आदमी बोला—आँ ?

—प्यास लगी है !

—आँए !

—पानी रे बैल, पानी चाहिए !

—ओं; पाइन मालिक ?

—मर साले !

आखिर ढहलेलवा उठा और पानी लाकर अपने मालिक को उसने ठण्ढा किया।

कहने पर भगिना बाबू को भी वह पानी दे आया, अपनी ऊह[4] होती तो पूछ भी लिया होता !

पानी पीकर मामा-भगिना दोनों फिर बैठने को हुए···

ठहरो, लघुशंका कर आऊँ—कान में जनेऊ लपेटकर मामा बोले।

भगिना बाबू के लिए मामा का सक्रिय समर्थन मानो आवश्यक था,

१. मतिशून्य, बुद्धिहीन। २. जून। ३. महाबुद्ध्। ४ समझ।

कान पर जनेऊ चढाते हुए बोले—मैं भी मामा !

दोनों पेशाव कर आये पानी लेकर।

तख्तपोश पर बैठते हुए मामा ने फुसफुसी आवाज मे कहा—देखा कुछ ?

क्या ?—विस्मय से आँखें फैल गई भाजे की।

—अरे, उधर पीपल के तले पाँच-छः आदमी खड़े थे।

—यही लोग होंगे ?

—तो, और कौन ?

दुर्गा ! दुर्गा ! काली ! काली ! !

भाजा पण्डित था, सीधा-साधा संस्कृत पण्डित। उसका हृदय एक अज्ञात आशंका से कम्पित हो उठा। वह सोचने लगा···मामाजी के माथे पर व्याह का यह कौन-सा भूत सवार है, यह इनको चौपट करेगा एक-न-एक दिन ! फिर उसे याद आईं अपनी दिवंगत मामियाँ, एक-एक करके याद आईं। ममेरे याद आये, अपने पिता के प्रति उन लड़कों की जो कुढन थी सो याद आई···अपने ननिहाल के बहुतेरे दृश्य उसकी आँखो के सामने नाचने लगे। किस चक्रव्यूह मे आज मामा फँस गये है !···यह सोचते ही वेचारे का चेहरा भारी हो उठा। उसे लच्छन अच्छे नही नजर आ रहे थे। यह विश्वास उसका संशय के भँवर मे ऊब-डूबकर रह गया था कि सकुशल यहाँ से लौटेंगे और घर पहुँचेंगे।

बाबू चतुरानन चौधरी भी गुमसुम थे। इस तरह की पशोपेशी मे वह भी कभी कहाँ पड़े थे ? पहला व्याह तो खैर सत्रह साल की ही आयु में हुआ था, मुला[1] बाकी तीनों शादियाँ चालीस के ऊपर की थी उन्होंने। क्या मजाल, कही किसी ने चूँ तक किया हो ! और, आज क्या इस-छोटी सी बस्ती के ये मामूली छोकरे शेर की मूँछें नोच डालेंगे ?

खानदानी शान-शौकत की याद आते ही मालिक की रीढ तन गई, चेहरे पर तेज छा गया और आँखों की चमक चौगुनी हो गई। मन ऐसा ताजा हो उठा कि पान के चार स्पेशल बीड़े एक ही बार मुँह मे डाल

१. मुदा, लेकिन।

लेने की इच्छा होने लगी ! लेकिन अब तो वह 'दूल्हे के रूप में' छिक चुके थे, जब तक ब्याह नहीं हो लेगा तब तक सिवाय पानी के और कोई भी वस्तु मुंह में नहीं डालने देंगे लोग !

किसकी मजाल है कि अब इस ब्याह को रोके ?

छोकरे ऐसी-वैसी हिमाकत करेंगे, चाबुक से एक-एक की पीठ फोड़ दूंगा, हां !

मैं कुजड़े के खेत का मूली-बैंगन नहीं हूं, मानिकपट्टी-मढ़िया के चौधरी-खानदान का पट्टीदार हूं ?

शेर-शेर हैं, गीदड़-गीगड़ ही रहेंगे···

······दूल्हे ने दिमागी मैदान में स्वाभिमान का घोड़ा छोड दिया था, टापों की कल्पित आवाज से मन-प्राण उसके भर-भर उठे थे।

घटकराज ने आते ही भंग छानी थी, मामूली कुछ खाकर जलपान किया था और बैठके की दूसरे छोरवाली कोठरी में खिडकी के सामने चारपाई पर तनकर सो गये थे। अभी तक उनकी योगनिद्रा पूर्ण नहीं हुई थी। कड़ी हिदायत थी कि उन्हें कोई उठाए नहीं। हां, सिंदूरदान के पश्चात् उन्हें अवश्य ही उठा दिया जाय—वर-वधू के मस्तक पर दूध और अच्छत डालकर आशीष देंगे, अपने ही घर का तो काम है वह !

बीच में इतना बड़ा वृकाण्ड मच जाने पर भी घटकराज की नींद नहीं टूटी थी, अब भी ऋषभ-स्तर में वह अपनी नाक बजाये जा रहे थे—ठर्र र्र र्र र्र र्र···ठो ो ो ो···ठर्र र्र र्र र्र र्र···बड़ी पुष्ट और लयबद्ध ध्वनि थी, ऐसी कि सुनने पर कान तिरपित हो उठते और हृदय का अंतरा-कोना गुदगुदा जाता !

घटकराज की इस सुख-समाधि पर दूल्हे का भाजा मन ही मन ईर्ष्यालु हो रहा था, उसे पिछली रात भी अच्छी नींद नहीं आई थी।

ढहलेलवा बैठके के छोर पर खंभेली से अपनी पीठ टिकाये नीद के झकोरे लेने लग गया था, फिर निचले होठ का मध्यप्रदेश तार-तार लार टपका रहा था उसका। जांघ पर की धोती भीग रही थी।

हवा की कमी से पेट्रोमैक्स की रोशनी मद्धिम पड़ती गई। अन्त

में लाइट बिल्कुल कम हो जाने पर प्रकाश का वह यन्त्र फप्-फप् करने लगा !

फिर भी किसी का ध्यान उस ओर नही आकृष्ट हुआ !

रोशनी बिल्कुल ही कम हो गई। लगा कि आखिरी हिचकी लेकर पेट्रोमैक्स अब अपनी इहलीला का संवरण कर लेगा।

इतने मे चट् से दो युवक आये, एक नीचे ही खड़ा रहा और दूसरा मिट्टी की दो सीढियाँ टपकर बैठके में आ धमका।

उसने फुर्ती से पेट्रोमैक्स मे हवा भरनी शुरू की। मैंटल एकबारगी भभक उठा, फिर घुप्प ! और फिर झकाझक लाइट से समूचा दालान जगमगा उठा···

अब वह युवक नीचे आ गया अँगनाई में।

दूल्हा और उसका भगिना—दोनों सँभलकर उन अपरिचित चेहरों की ओर घूरने लगे।

भगिना ने चतुराई की, बोला—आइए, नीचे कब तक खड़े रहेंगे आप लोग ?

आइए न !—दूल्हे ने शंकित स्वर मे भांजे की बात का अनुमोदन किया।

दोनों चुपचाप आकर फर्श पर बैठ गये।

पूछने पर सांवली सूरत और फैली-फैली आँखोवाले युवक ने कहा —मेरा नाम है दिगम्बर मल्लिक और इनका बलभद्र मिश्र। मैं घर का काम-काज करता हूँ, यह नाइन्थ क्लास के विद्यार्थी हैं···

थोड देर तक दोनों ओर चुप्पी।

इसी बीच में पुदीना का अर्क और अमृतधारा लेकर टुनाई लौटा, उसके पीछे माहे था।

टुनाई अन्दर चला गया, माहे आकर मल्लिक के पास बैठा।

मल्लिक गौर से दूल्हे के मुँह की ओर देख रहा था इतनी देर तक। अब गम्भीर स्वर में उसने कहा—बाबू साहेब, हम आपसे फिर प्रार्थना करने आए हैं। ब्याह का यह आग्रह आप छोड़ दें···

—एँ क्या कहा !

बुड्ढा बमक उठा, पागल और घवहा कुत्ते की तरह वह भौंकने लगा—तुम लोग गुण्डई पर उतर आये हो ! सारी काबिलियत घुसाड दूंगा। देखो तो भला, सावन जनमा गीदड और भादो आई बाढ और गिदडवा चिल्लाया बाप रे ! ऐसी बाढ़ कभी न देखी। बच्चू, अभी तो कुल चार रोज के होवे किये हो, नाभी की नार तक नही कटी है अभी ! अभिए चले हमे सबक सिखाने ? चार अच्छर पढ लिये हो तो क्या बूढ़-पुरनिया लोगों की गंजी चाँद पर चप्पल मारोगे ?···

गुस्सा के मारे कपार की नसें उभर आई थी उसके तो ! आँखों के कोए लाल-लाल डोरों मे सुर्ख हो चले थे, मुंह से अबरक का चूरन उड रहा था ! नाक की नोंक पर पसीने की बूंदियां हीरे की कनियो को मात दे रही थी। बारी-बारी से हाथ फड़क और सिमट रहे थे

हल्ला-गुल्ला सुनकर खोंखा पण्डित निकले, हाथ मे मोटी लट्ठ थी।

माहेश्वर उनका निशाना था।

पण्डित ने भरपूर वार की थी, इस दफे भी माथे को उसने बचा लिया मगर कमर मे काफी चोट आई। वह लट्ठ का छोर पकड़कर वहीं बैठा रहा।

बलभद्र (बूलो) पण्डित को ढकेलकर अन्दर दे आया और इधर से साँकल चढ़ा दी उसने।

आप यों नही मानेंगे !—दिगम्बर ने मुंह में दो उंगलियां डालकर जोर की सीटी बजाई।

सीटी बजते ही पाँच-छ. जवान सिंदुआर की झाड़ियों की आड़ में से परगट हुए, सबके अपनी-अपनी लाठी थी। पीछे से एक आदमी दूल्हे का घोडा लेकर आया।

—लीजिए, यह आपकी सवारी आई, आप फौरन चल दीजिए।

—बाकी सामान कल चला जायेगा।

—फिर इस बस्ती मे आप कभी मत आइएगा।

—पाँच लड़कों का बाप, साठ वर्ष की उमर और दूल्हे की यह साज-सिंगार ! छी-छी-छी !!

—डूब मरने को पानी क्या गाँव में नही मिला जो इतनी दूर

दूल्हे का भगिना खडा हो गया। हाथ जोड़कर लोगों से कहा उसने —आप सव कव तक खड़े रहेंगे ? आइए, वैठ जाइए···

हम वैठने नही आये है।—एक बोला, शायद गोनउडा था।

तो, लो फोड़ दो ! यह रहा मेरा सिर!—आवेश में भरकर दूल्हा वोला और माथे को जरा आगे वढ़ा दिया।

राम राम राम राम !!—वच्चन बोला।

दिगम्वर ने कडाई से कहा—वच्चन वावू, यह वावू साहेव जितनी देर लगाएँगे, अशान्ति उतनी ही वढेगी। आप यह गाँठ वाँध लीजिए कि गाँव का एक-एक नौजवान पिटते-पिटते बिछ जायेगा मगर यह व्याह नही होने देगा। यह बहुत वड़े आदमी है, इलाके-भर मे नामी हैं। इनके दो लड़के पटना और मुजफ्फरपुर में प्रोफेसरी करते है, एक लडका लहेरियासराय में वकालत करता है···लाज-शरम को धो-धाकर यही पी गये हैं तो क्या हम भी वेहया वन जायँ ? पण्डितजी लालच के मारे उठा लाये हैं इन महाशय को, उनकी बात छोडिए। विसेसरी जैसी तो इनकी नतनी-पोती होगी···यह अभी सीधे नहीं मानेंगे तो वाँध-छूँधकर और खटोले पर ढोकर इन्हें कल तक फिर सौराठ पहुँचा दिया जायेगा, इन्हीं के खिलाफ कल नौजवानों का हम एक जुलूस निकालेंगे। समझ क्या रखा है इन्होने आखिर ? खुद ही वावू साहेव अपनी वेइज्जती करा रहे हैं ! ठीक है, अकिल भी सठिया गयी होगी !

वच्चन बुत बना खड़ा रहा।

टुनाई का भी वही हाल था।

अन्दर भूँकते-भूँकते पण्डितजी का गला अव अजीव आवाज निकाल रहा था। उधर बाहरवाली एक कोठरी मे घटकराज की नाक बदस्तूर अपनी तरन्नुम मे थी।

ढहलेलवा बैठा था, शोरगुल ने उसकी तन्द्रा का तोड दिया था। अब वह लोगों की ओर मुलुर-मुलुर देख रहा था।

दूल्हा का माथा चक्कर खा रहा था। जिन्हें उसने महज छोकरे समझ रखा था, उन्होने अव उसकी वोलती वन्द कर दी थी। वृद्ध-विवाह के विरोध में इस प्रकार का संगठित मोर्चा ! इस वात की तो

आये ?

—सूरत-सकल तो देखो !

—कहाँ का छछूँदर यह हमारी बस्ती में आ गया !

आदर-सम्मान की यह तैयारी देखकर चतुरा चौधरी की सारी हेकड़ी भूल गई। इस समय उसे फतूरी और मुखिया का अभाव खटका।

फतूरी ठाकुर और मुखियाजी रंग में भंग देखकर किसी बहाने खिसक चुके थे, जोतखीजी बीच मे ही उठकर चल दिये थे, जबकि मालिक और भगिना बाबू पानी पी-पीकर आप ही अपना दिमाग चाट रहे थे।

पण्डित को अन्दर दो बेटों ने पकड रक्खा। बच्चन और टुनाई आँगन के सदर रास्ते से बाहर आये और पूरी पल्टन को मुस्तैद पाकर बेहद घबड़ाये।

मोटी आवाजवाले दूल्हे की गर्जना सुनकर टोले-मुहल्ले के लोग जग गये थे। अपने-अपने घर से उचक-उचककर सभी पेट्रोमैक्स के जगमगाते प्रकाश में हो रहे उस नाटक का आस्वाद ले रहे थे, संशय और कौतुक का मिश्रित भाव सबके चेहरों पर छाया हुआ था।

अन्दर, रूम में कैद पण्डित ताबड़तोड गालियाँ बके जा रहा था।

बच्चन और टुनाई को सामने पाकर दूल्हा के बोल फूटे—कहिए बच्चन बाबू, आपकी क्या राय है ?

माहे को चोट तो काफी लगी थी, फिर भी उसने तडाक से कहा—चुपचाप घोड़े पर चढिए, सीधे चले जाइए दरभगा !

गुर्राकर चतुरा चौधरी बोला—मैंने तुमसे नही पूछा !

—तो, बच्चन बाबू की भी यही राय है।

दिगम्बर अधिकारपूर्ण टोन मे बोला और बच्चन की ओर देखने लगा।

—हाँ बच्चन बाबू ?

....

बच्चन की मानो घिग्घी बँध गई हो ! एक शब्द क्या, एक अक्षर भी उसके मुँह से बाहर नही आ रहा था।

दूल्हे का भगिना खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर लोगों से कहा उसने—आप सब कब तक खड़े रहेंगे ? आइए, बैठ जाइए···

हम बैठने नहीं आये है।—एक बोला, शायद गोनउडा था।

तो, लो फोड दो ! यह रहा मेरा सिर!—आवेश में भरकर दूल्हा बोला और माथे को जरा आगे बढ़ा दिया।

राम राम राम राम !!—बच्चन बोला।

दिगम्बर ने कड़ाई से कहा—बच्चन बाबू, यह बाबू साहेब जितनी देर लगाएँगे, अशान्ति उतनी ही बढ़ेगी। आप यह गाँठ बाँध लीजिए कि गाँव का एक-एक नौजवान पिटते-पिटते बिछ जायेगा मगर यह ब्याह नही होने देगा। यह बहुत बड़े आदमी है, इलाके-भर में नामी हैं। इनके दो लड़के पटना और मुजफ्फरपुर में प्रोफेसरी करते हैं, एक लड़का लहेरियासराय में वकालत करता है···लाज-शरम को धो-धाकर यही पी गये है तो क्या हम भी बेहया बन जायँ ? पण्डितजी लालच के मारे उठा लाये हैं इन महाशय को, उनकी बात छोडिए। बिसेसरी जैसी तो इनकी नतनी-पोती होगी···यह अभी सीधे नही मानेंगे तो बाँध-बूँधकर और खटोले पर ढोकर इन्हे कल तक फिर सौराठ पहुँचा दिया जायेगा, इन्ही के खिलाफ कल नौजवानो का हम एक जुलूस निकालेंगे। समझ क्या रखा है इन्होने आखिर ? खुद ही बाबू साहेब अपनी बेइज्जती करा रहे हैं ! ठीक है, अकिल भी सठिया गयी होगी !

बच्चन बुत बना खड़ा रहा।

टुनाई का भी वही हाल था।

अन्दर भूंकते-भूंकते पण्डितजी का गला अब अजीब आवाज निकाल रहा था। उधर बाहरवाली एक कोठरी में घटकराज की नाक बदस्तूर अपनी तरन्नुम में थी।

ढहलेलवा बैठा था, शोरगुल ने उसकी तन्द्रा का तोड़ दिया था। अब वह लोगो की ओर मुलुर-मुलुर देख रहा था।

दूल्हा का माथा चक्कर खा रहा था। जिन्हें उसने महज छोकरे समझ रखा था, उन्होंने अब उसकी बोलती बन्द कर दी थी। वृद्ध-विवाह के विरोध में इस प्रकार का संगठित मोर्चा ! इस बात की तो

बाबू चतुरानन चौधरी ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कभी ! काल बली जो न दिखावे, जो न सुनावे।

उठो, चलें !—बाबू चतुरानन चौधरी ने भांजे से कहा और माथे पर पगडी डालकर उठ खडे हुए। हाथ से नौकर को चलने का इशारा दिया। तख्तपोश से नीचे उतरे, जूते पहनकर अँगनाई में आये।

भगिना ने पहला काम यह किया कि तख्तपोश के नीचे से जीन ले जाकर घोडे की पीठ पर डाल दी। लगाम बाबू साहेब ने घोडे के मुँह में खुद ही डाला।

सब चुप थे। भीतर खोंखा पण्डित भूंक रहे थे। बाहर कभी-कभी वह कुतिया भूंक उठती थी।

उचककर बाबू चतुरा चौधरी घोडे पर चढ गये और वह चल पड़ा। उन्होंने न किसी से कुछ कहा और न बच्चन के नमस्कार का ही प्रत्युत्तर दिया। हाँ, भगिना से कहते गये—धीरे-धीरे आओ तुम दोनों, तारसराय में मिलेंगे···

भावी दूल्हा के भगिना बाबू और गठरी-मोटरी का भार सँभालकर ढहलेलवा खवास उधर चले तो इधर पेट्रोमैक्स भी अपनी अन्तिम साँस ले रहा था।

नौ

थोडी रात थी तो एकाएक बादल उमड आये और डबल अछार[1] बरखा हुई।

रात की घटना को भूलकर लोग अपने-अपने काम में लग गये थे।

हलवाहे बैलों को आगे किये कन्धे पर हल सँभाले अपनी-अपनी दिशा में जा रहे थे। हेहूआ भी उनमें था, वह बूलो का अपना हलवाहा था।

खोंखा पण्डित, घटकराज और बच्चन पौ फटने से पहले ही घर से निकल गये थे। हवेली का लच्छन ऐसा लग रहा था कि ऊपर महामारी

१. तोड़, वर्षा की एक मात्रा।

मँडरा रही हो। उत्साह और जीवन का एक भी निशान बाकी नहीं था। वर्षा की चोटें खाकर भी बीच आँगन का वह कलात्मक अइपन[1] मिट बिल्कुल ही नही गया था। घर से निकलते समय पण्डितजी खीझ के मारे खुद ही उसे एँड़ी से घिसकर मिटा गये थे। अपने हाथो से अंकित किये हुए मांगलिक चित्र का इस प्रकार अवसान देखकर पण्डिताइन देर तक रोती रही थी, रोती-रोती बरामदे की भीगी सतह पर ही बेचारी सो गई थी।

बिसेसरी को बुखार चढ आया था, रामेसरी संज्ञा-शून्य होकर बेटी के पायताने औंधे मुँह लेटी हुई थी।

बच्चे रात देर तक सो नही सके थे, वे अब तक बेसुध सोये पड़े थे।

बड़ी और छोटी बहुएँ अपनी-अपनी देहरी[2] पर चौकठ[3] में पीठ टिकाये और कमर टेढी किये बैठी थी, बाईं हथेली पर बायाँ गाल थामे। मझली रसोईवाले घर के ओसारे में झाड़ू दे रही थी। चेहरा उसका भी फीका ही नजर आ रहा था।

टुनाई और छोटा लड़का बुदुर बैठक मे अभी तक सो रहे थे। मँझला सबेरे उठकर, दिसा-फराकत से निपटकर मधुबनी की छवज्जी गाड़ी पकड़ने इसटीसन जा चुका था। यों भी वह अपने वकील साहेब से आज हाजिर होने की बात करके आया था। सझला गाछी[4] की ओर इस मतलब से निकल गया कि तीन-चार गाही आम तो जरूर अपना हिस्सा हुआ होगा।

दालान में पेट्रोमैक्स अब तक उसी तरह लटक रहा था। तख्तपोश पर कम्बल, दरी और उलेच ज्यों के त्यो बिछे पड़े थे। मुखियावाला बड़ा पंखा उस पर उसी भाँति पड़ा था, भीत से टिका हुआ।

माहे पर पण्डितजी ने रात जो खड़ाऊँ फेंकी थी, उसे अँगनाई से उठाकर और जोड़ी से मिलाकर छकौड़ी ने तख्तपोश के नीचे रख दिया था, वे भी वहीं पड़ी थीं।

१. मांगलिक चित्र। २. दहलीज, देहली। ३. चौखट। ४. बगीचा।

चाँदी की खिलवट्टी[1] में सँभालकर रखे हुए पान के आखिरी दो बीड़े यहाँ आने पर चतुरा चौधरी ने मुँह के भीतर डाले थे, ऊपर से किमाम और पतिनजार[2] डाला था। फिर थोड़ी देर बाद गाढ़ी पीक की जो पिचकारी बाबू साहेब ने छोडी थी, वह अँगनाई की उस ठोस सतह पर अब भी अमिट थी—रात्रिशेष की घनघोर-घटाओं के प्रबल आघात कुछ भी कहाँ बिगाड सके थे उसका?

दिन काफी चढ़ आया तो टुनाई की भी नींद टूटी, उसने बुदुर को झकझोरकर उठा दिया।

दोनों मिलकर फर्श, दरी, कम्बल वगैरह समेटने लगे। किसी को तो आखिर समेटना ही था। लगन के दो दिन बाकी थे। इस बार जो नाटक होना था हो चुका था। अब इन दो दिनो मे बिसेसरी के लिए दूसरा दूल्हा कहाँ से आयेगा? अगहन में अगर उसके भाग ने अपना जोर दिखाया तो मिल जाय शायद कोई ठौर-ठिकाने का आदमी!…यही सब सोच रहा था टुनाई और बुदुर को भी हिदायत दे रहा था काम की और खुद भी कर रहा था।

…कहाँ मिलते हैं अच्छे लड़के? लड़की का ब्याह बड़ा मुश्किल काम है! रामजी के हाथों शिवजी का भारी धनुष तोड़ा जाना उतना कठिन काम न भी हो मगर सीता के लिए अच्छा लडका मिल जाना अब उतना आसान काम नहीं रहा। रामजी सैर करते हुए मिथिलापुरी में दाखिल हुए, सीताजी के अभिभावकों को लडका पसन्द आ गया। गुरु विश्वामित्र भी चट से राजी हो गये! धनुष पीछे उठा था न, बात-चीत तो पहले ही उठी थी!…दिगम्बर और माहे ला देंगे कहीं से कोई दूल्हा हमारी भाजी के लिए? जिसकी अपनी बहन क्वाँरी बैठी हो, वह दूसरे की लड़की-भांजी की शादी के लिए कहाँ से आदमी गढेगा?…

टुनाई का ऐसा सोचना गलत थोड़े ही था?

मल्लिक की बहन शकुन्तला सत्रह साल की थी, अब तक उसका ब्याह न हो पाना नौगछिया के सयानों-समझदारों की भलमनसाहत पर

१. पान के बिड़े रखने की डिबिया। २. बनारस का मशहूर और महँगा जर्दा।

एक करारा तमाचा था, जमाना उनकी मूंछो को मानो चैलेंज दे रहा था !

दिगम्बर को लेकिन इस फिक्र ने कभी परेशान नही किया । बूढी या अधेड़ किसी स्त्री ने साहस करके अगर उससे कभी पूछ ही लिया तो चट से जवाब मिलता—क्या जल्दी पड़ी है अभी चाची ? आदमी का बचपन तो बीस साल की उम्र तक चलता है ! चार दिन और खा लेगी, खेल लेगी । तब तक अपना कुछ सीख-साख भी लेगी ही ।

ऐसा जवाब पाकर औरतें दिगम्बर का मुंह ताकती रह जाती । उनकी समझ मे आता ही नही कि यह कैसा भाई है । सास-ननद और घरवाला खुद जितना सिखाता है, उतना भला और कोई क्या सिखलावेगा ? धाकड़[1] दीखती है सकुन्तला, बाँह ऊपर करती है तो छप्पर छू जाता है और अपने भाई के लेखे अभी छोटी है ? हुँह !

नुक्ताचीती के इन उड़ते रेशो से दिगम्बर कभी नहीं घबडाया । बड़ी लगन से वह शकुन्तला को पढ़ा रहा था । प्राइवेट तैयारी से मिडिल करवा दी थी । आजकल साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा का कोर्स ले दिया था, थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी चल रही थी ।

दिगो खुद कहानियाँ लिखता था, अब तक चार-छः से जादा नही लिखी होगी । यों अधूरी तो दसियों पड़ी थी, फुटकल कागजों और स्कूली कापियों के बाकी बचे पन्नों मे बिखरी हुई थीं—कुछ एक पेन्सिल की धुंधली-मिटती लिखावटों और कुछ एक नयी-पुरानी निबो की पतली-मोटी व हल्की-गाढ़ी नीली-बैंगनी लिखावट मे । वे किसी साहित्यकार तक बेशक नही पहुँची थी, लेकिन बूलो और माहेश्वर ने और अपने गँवई स्कूल के उठती मूंछोवाले दो छोटे मास्टरो ने दिगम्बर मल्लिक की एक-एक कहानी ध्यानपूर्वक सुनी थी, अपना-अपना परामर्श भी दिया था । अनेकों सुझाव दिगम्बर को पसन्द आये थे, उन्हे वह अमल मे ला चुका था ।

दिगम्बर का पिता नीलकण्ठ मल्लिक बिहार बैंक (पटना) मे असि-

1. सांड, दोगला तगड़ा बैल ।

स्टेट एकाउंटेंट[1] था। कुल जमा २१०) मिलते थे उसे। '३०-'३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में हाई-स्कूल की मास्टरी छोड़कर और नमक बनाकर नीलकण्ठ बाबू जेल चले गये, साल-भर की सजा हुई थी। छूटकर आये तो पिता का देहान्त हो चुका था—दिगो के दादा मुंशी बिदेश्वर मल्लिक बरह-गोडिया के खरौडे-खानदान में अपने अन्तिम दिनों तक एकमंट' थे। उन्हीं की अरजी हुई सम्पदा पर यह मल्लिक परिवार नौगछिया के उन पाँच-सात सुखी परिवारों में से एक था। दो लड़के, दो लड़कियाँ—बस, नीलकण्ठ की औलाद की सीढ़ियाँ यहीं आके ठमक गई थीं। महिलाओं की मण्डली जुटती और सन्तान का प्रसंग छिड़ता तो ललाइन दच्छिन तरफ हाथ-मुँह उठाके कहा करती—दुहाई गंगा मइया की, अपने तो यही चारों जियें और अच्छे दिन देखें-दिखलावें! खाँचा-भर घी-पूत लेके क्या करेंगे?…बात की यह आखिरी कड़ी पण्डिताइन जैसी बरियार[2] कोखवाली सुहासिनों के मरम को आर-पार छेद डालती थी, उनके लिए फिर वहाँ बैठना कठिन हो जाता!

गणित में कमजोर था, नाइन्थ में दो बार फेल हुआ। और तब से दिगम्बर घर पर ही रहने लगा। बाप ने भी छोड़ दिया। उनका ध्यान अब छोटे पर पड़ा, क्योंकि वह हिसाब में तेज था और अंग्रेजी में भी—लम्बोदर को नीलकण्ठ बाबू अब साथ रखने लगे। बाकरगंज (पटना) में सात साल पुराना अपना डेरा था; दोनों बापूत[3] साथ रहते। खाना तिरहुत भोजनालय में।

अख्यात कांग्रेसी नेता गुणवन्त लाल दास की मेहरबानी से यह नौकरी नीलकण्ठ बाबू स्वदेशी शासन के पहले दौर ('३७-'४०) में पा गये थे। ये भी गणित में तेज। स्कूली जीवन में गणित का ही अध्ययन इनके जिम्मे पड़ता था।

उनके अपने ही कहने के मुताबिक दिगम्बर की हिसाबी कमजोरी पैतृक नहीं, मातृक थी। उसके नाना यानी नीलकण्ठ बाबू के ससुर श्री यदुनन्दन लाल मैथिली और पुरानी हिन्दी (ब्रजभाषा-अवधी) के सुरुचि

१. एकाउंटेंट, हिसाब रखनेवाला किरानी। २. हट्टी जबरदस्त। ३. बाप और पूत।

थे, आप 'ललितकिशोर' उपनाम से अपने इलाके में प्रसिद्ध रहे—उन दिनों विहार बंगाल के अन्दर था, युनिवर्सिटी कलकत्ते मे ही थी, लाभजी तीन बार मैट्रिक में फेल हुए···तीनो बार गणित मे ही गिरे थे। तभी से अपना मन दूसरे विषयों से हटाकर वह कविताएँ लिखने लगे और 'ललितकिशोर' नाम रखा; घर-गिरस्ती का भार आ पडा तो भी 'ललितकिशोरजी' की प्रतिभा कुण्ठित नही हुई। सो, दिगम्बर ने अपने नाना की विरासत सँभाली थी। पिता को मालूम हो चुका था कि कहानियां लिखता है।

ललाइन को इन बातों से कोई मतलब नही था। वह थी तो साक्षर मगर हनुमान चालीसा, नागलीला, दानलीला, घरेलू काज-परोजन के गीत, मुसाइ ठाकुर की नचारियां[1]—इनसे अधिक कुछ नही बाँचती थीं···जरूरत भी क्या थी!

आज दिगम्बर दिन-भर सोता रहा!

सबका यही हाल था—बूलो, उसकी भाभी···डेढ पहर दिन-उठे खा-पीकर जो सोए सो घड़ी-आध-घड़ी दिन बाकी रहा तभी जाके उठे थे। हाँ, भाभी को बच्चे ने उतना नही सोने दिया जितना वह चाहती थी।

माहेश्वर पर लाठी की चोट पड़ी थी, माँ ने घरेलू उपचार किया था। वह भी दिन-भर आराम करता रहा।

साँझ तक जब खोखा पण्डित और बच्चन नहीं लौटे तो पण्डिताइन का जी धक्-धक् करने लगा···

कहीं फिर दूल्हा न आ जाय आज भी!

सौराठ जाकर दूसरा दूल्हा भी तो ला सकते है!

बुढवा अपना रुपैया वापस ले लेगा।

अभी तो आ सकते हैं, अबेर[2] थोडे हुआ है?

तरह-तरह के तर्क-वितर्क पण्डिताइन के मन को झकझोर रहे थे। रात को खैर तूफान आ ही गया, आज दिन में भी बेचारी से कुछ खाया

१. नचारी; लाचारी। लाकगीत जो शिव को सम्बोधित करके अपनी बबसी के बारे मे होते हैं। २. बेवक्त।

नहीं गया। पानी ढकोस-ढकोसकर अपने मुँह का स्वाद फीका कर लिया सो अलग। रात जो खीर पकी थी दूल्हा-दूल्हिन के लिए, वह सबेरे बच्चों ने खाई। उमस के कारण भात-दाल खाने के काबिल नही रह गये थे, उन्हें फेंक दिया गया। दाल थोडी ले गई सुबधा की माँ; भात बिल्कुल गल गया क्योंकि शाम को उसे उतरे चौबीस घण्टे हो गये थे। बड़ी और पकौड़े दिन मे तो कुछ बच्चो ने खाये थे; कुछ सँझला भाई, टुनाई और बुदुर ने। बहुओं ने भी थोडा-कुछ खाया ही होगा।

रामेसरी ने तीन बार पानी पिया था, बस। बिसेसरी का बुखार अब उतर चुका था। नानी संझा-बाती[1] के बाद छोकरी का कपार छूकर बोली—जर उतरा नही, भितरा गया है। खाने को कुछ नहीं, पीने को औंटा हुआ पानी मिलेगा···

किसने खाना माँगा है?—बिसेसरी रुआँसी होकर बोली और करवट फेरकर लम्बी तन गई। रामेसरी बरामदे मे बैठी थी सो उठ आई और बेटी से सटकर बैठी, और हाथ फेरने लगी उसकी पीठ पर।

माँ चली गई तो पूछा—कैसा मन है?

बिसेसरी कुछ नही बोली।

रामेसरी ने अपनी दाहिनी हथेली पहले तो उसके कपार पर रखी, फिर छाती के बीच ले गई। फिर उसकी एक हथेली को अपने कपार से लगाया और बोली—नही गे[2], कौन कहता है कि बुखार भितराया हुआ है!

हथेली छोड़ दी उसने।

थोड़ी देर चुप रही, विभोर होकर बेटी के उतरे चेहरे को देखने लगी!

कुछ छन बाद उसकी ठुड्डी छूते हुए पूछ दिया—भूख लगी होगी बेटा!

लड़की ने इनकारी मे आहिस्ते से माथा हिला दिया।

—गाय का गरम दूध थोड़ा जरूर पीना पड़ेगा, हाँ!

१. सन्ध्या का दीप, दिया-बाती, शाम के वक्त दीया जलाना। २. री

जवाब में फिर उसी तरह सिर हिला।

—तो मैं भी कुछ नहीं खाऊँगी।

अब लड़की की भौंहे तन गईं, कड़ककर उसने कहा—मैं कोई निरी बच्ची हूँ ? दुधमुंही ? क्या समझती हो मुझे ?

रामेसरी अकबका गई, कौन-सी ऐसी बात उसके मुँह से निकली जिससे बीसो के जी को आघात पहुँचा है ? निगाहों को सामने की सादी भीत पर टिकाकर वह सोचने लगी···

थोड़ी देर बाद रामेसरी ने बेटी के मुंह की तरफ अपनी नजर फेरी तो उसके गालो पर आँसू के टघार[1] ढिबरी की धुंधली रोशनी मे भी चमक रहे थे !

वह दंग रह गई, अब भी अपनी भूल उसकी समझ मे नही आई।

एक अपराधी की कातर दृष्टि से माँ अपनी बेटी की तरफ देखने लगी।

आँचल के पल्ले से स्वयं ही अपनी आँखें पोंछती हुई बिसेसरी बोली—माँ, मुझे किसी काम के लिए मजबूर मत करो !

रामेसरी धीरे से बाहर निकल गई।

दस

तारसराय स्टेशन के प्लेटफार्म पर कम्बल बिछाकर चतुरा चौधरी लेटा हुआ था, भगिना भी उसी मुद्रा मे था। गठरी-मोटरी का बाकी सामान सिरहाने सहेज लिया गया था।

टहलेलवा को बैठे ही बैठे ऊँघ आ रही थी। वह कुछ हटकर बैठा हुआ था।

पौ फटने को थी। अभी-अभी बादल बरस चुका था, इसी से हवा में कुछ ठण्ढक थी। पेड़ अपनी-अपनी पत्तियों से अब भी मोटी-मोटी बूँदें टपका रहे थे। सूखी धरती ने दिल खोलकर वर्षा का स्वागत किया था। जहाँ-तहाँ मेढक पुलकित हो-होकर ऋतु की रानी की जयजयकार

1. बहुत पतला प्रवाह, पतली धार।

कर रहे थे। ऊसर खेतों की बलुआही मिट्टी पर से नंगे पैरों चलना बड़ा अच्छा लग रहा था।

खोखा पण्डित आपे में नहीं थे। ऐसा लग रहा था उन्हें कि खोपड़ी के भीतर कोई मानो फरही भून रहा है। रात-भर खीझ और लाचारी के मारे वह कबाब की तरह सिकते रहे थे।

घटकराज का भी जी बेचैन था। इतने ब्याह आज तक उसने ठीक किये थे, ऐसी दुर्घटना तो कभी हुई ही नही थी ? मुट्ठी-भर छोकड़ों ने सयानों की नाक मे कौड़ी बांध दी। लेकिन गाँव के लोगों ने लापर्वाही क्यों दिखलाई ? मुखिया क्यों नही आगे आया ?

वच्चन भी बहुत चिन्तित था। अब बिसेसरी का क्या होगा ? क्या बुरा था, यह शादी हो जाती तो निश्चिन्त हो जाते ! वह पहले ही शंकित था कि गाँव के नौजवान कोई खुरापात[1] न खड़ा करें, सो आखिर वही हुआ...

दूर से ही घटकराज ने आवाज दी—चौधरीजी !

आइए, आइए ! —उधर से जवाब आया।

यह स्वयं मालिक का स्वर था।

वह उठकर बैठ गया था। भांजे को उसने पड़े ही छोड़ दिया। क्या आवश्यकता थी आखिर बेचारे को उठाने की ? पास ही लोटा रखा था, पानी से भरा। मालिक ने गर्दन फेरकर वहीं कुल्लियाँ की, मुँह-आँख-नाक-कान-कपार पोंछे और छोटका अँगोछा खोजने लगा। नहीं मिला तो नौकर को आवाज दी—गमछा कहाँ रखा रे ?

इ ! —भगिना नीद-भरे स्वर मे ही बोला और पीठ के नीचे हाथ डालकर गमछा निकाला, मामा ने थाम लिया। गमछा से हाथ-मुँह पोंछकर चतुरा चौधरी पल्थी मारके बैठा। तब तक वे भी नजदीक आ गये थे।

कम्बल पूरा बिछा था। अभी बैठने को भी काफी जगह उस पर थी। काली ऊन का आठ हाथ लम्बा, चार हाथ चौड़ा नेपाली कम्बल। सभी

1. खुराफात, उपद्रव।

बैठ गये। बच्चन ने छाता और गठरी एक ओर रख दिये।

बातचीत के सिलसिले को पहले बच्चन ने ही चालू किया!

—इधर तो वर्षा हुई नहीं मानो! प्लेटफार्म गीला-भर दीखता है!

चौधरी ने कहा—आपके तरफ काफी हुई होगी?

हाँ, घटकराज ने अपना मुँह खोला—वायुदेवता का खेल है! एक गाँव में मेघ बरसता है और आधा कोस हटकर दूसरे गाँव में धूल उड़ती है। सब परमात्मा की कृपा है!

परमात्मा का नाम सुनकर पण्डित ने जोर की साँस ली।

घटकराज ने बच्चन से पूछा—मधुबनी कै बजे जाती है ट्रेन?

—छऽ बजने में दस मिनट रहता है तब।

—अभी क्या टैम होगा?

—ठहरिए, स्टेशन से घड़ी देख आऊँ!

—जाओ!

खोंखा पण्डित अपने को महा-अपराधी समझ रहा था। वह किस मुँह से बाबू श्री चतुरानन चौधरी के सामने अब कुछ कहे? नजर मिलाने तक की हिम्मत नहीं हो रही थी! अपना बस चलता तो लौटाकर चौधरी को अभी घर ले चलते और आज दुपहर को ब्याह हो जाता...

पाँच बजे हैं अभी,—बच्चन ने वापस आकर कहा—अभी देर है!

यह लोटा लो, तुम तब तक डोल-डाल से हो आओ।—पण्डित ने लड़के से कहा तो वह मतलब समझ गया।

लोटा के सामने पराये के आगे झुकना का[1] दु कैसा-कैसा बुझाता था।

लोटा लेकर बच्चन चला गया तो हाथ जोड़कर पण्डितजी बोले—बाबूसाहेब, यह जो कुछ हुआ है सो सब मेरे ही पापों का फल समझिए! अवश्य ही पूर्वजन्म में मैंने कोई भारी प्रत्यवाय[2] किया होगा......

गला रुँध आया खोंखाई झा का, आँसू उमड़ आये! चौधरी का चेहरा साफ-साफ नहीं दीख रहा था। कपार की नसें उभर आईं।

१. क्या तो। २. बहुत बड़ा कुकर्म।

आहि[१] रे वा ! रोते हैं आप ?—घटकराज ने पण्डित का कन्धा झकझोरा।

आपका नही पण्डितजी, जुग का दोख है यह !—चौधरी बोले—इसमें भला रोने की क्या बात है ?

पण्डित ने स्वयं ही धोती के खूंट से अपनी आँखें पोंछी और खखार-कर गले को साफ किया, बगल में झुके और बाएँ हाथ की पहली-दूसरी उँगलियो से नाक के पूड़े को दबाकर पानी निचोया। धोती के पल्ले से नाक और उँगलियाँ पोछ लीं।

घटकराज ने अपनी नस निकाल रखी थी बाईं हथेली पर और नाक के दोनों पूड़ो में एक-एक बार डाल भी चुके थे शायद। नस-भरी चुटकी को नचाकर वह बोले—समझा चतुरानन बाबू, काम तो यह होकर रहेगा ! स्वयं विधाता भी इस कार्य को रोक नही सकते। चार दिन के लिए तिथि समझिए कि आगे को घिसक गई है, बस इतना-भर विधाता अड़ंगा डाल सकते थे सो हो गया; उनकी भी बात रह गई। आप नाहक ही उठ आये, काम तो आज होके रहता यह…

इसमें भी क्या सन्देह की कोई गुंजाइश थी ?—पण्डित टनमना[२] कर बोले।

चतुरा चौधरी अब भी गम्भीर बना रहा। उसे दिगम्बर का तम-तमाया चेहरा बार-बार याद आ रहा था। आज क्या, कभी भी यह नौजवान अब अपने गाँव मे इस तरह की शादी नही होने देगा। हाँ, यह दूसरी बात है कि लड़की दूसरी जगह पहुँच जाय…और वहाँ जैसे-तैसे उसकी सँथ में सेंदुर डाल दूँ…लेकिन ये [illegible] पर निगरानी नही रखेंगे क्या ?

फिर घटकराज की ओर मुंह करके कहा—ठीक है न मटुकी बाबू ?

सोलहो आना दुरुस्त !—घटकराज ने समर्थन किया।

थोड़ी देर चुप रहकर चतुरानन चौधरी ने कहा—पहले गाँव के लड़कों को तो समझा लीजिए !

खीज-भरी आवाज में पण्डित बोला—सब अवारा हैं बाबू साहेब ! और दिगम्बर ? उसे तो गाँव से निकाल बाहर न करूँ तो आप मेरे नाम पर काला कुत्ता पोस लीजिएगा !

नस की डबल चुटकी नाक के दोनों पुडो में ठूँसकर घटकराज ने सोंगा पण्डित की ओर अपनी गर्दन लम्बी की—बाप क्या करता है इसका ?

—पटने में नौकरी करता है।

—कितना पाता है ?

—अढ़ाई सौ।

—यह छोकड़ा घर बैठे-बैठे यही सब करता रहता है ?

—घर का काम देखता है, बाप ने छुट्टा छोड़ रखा है।

इस पर चतुरा चौधरी छंटी मूंछों पर हाथ फेरने लगा। उसे अपने गाँव के दो नौजवान याद आये जो डकैती के झूठे मामले मे छः महीने की कड़ी सजा पाकर आजकल जेल की हवा खा रहे थे। यह दिगम्बर वगैरह कही उसके गाँव मे होते तो इन्हे भी वह आसानी से किसी केस में फँसा सकता था। छिः, नौगछिया भी यह कोई बस्ती थी ! हिजडों का रैनबसेरा !! एक भी चेहरे पर पानी नही, किसी की आवाज में कड़क नही !

दूसरा विकल्प यह भी उठा कि बैदनाथ धाम या काशी में क्यों न किया जाय ब्याह का प्रबन्ध। तीर्थ के बहाने लड़की, उसकी माँ और नानी वगैरह का वहाँ पहुँचना कठिन नही होगा। चौधरी के लिए भी सुभीता रहेगा। इस दृष्टि से समस्तीपुर कही ज्यादा असुविधाजनक स्थान है······

बच्चन दिशा-फराकत से लौटे तो उन्होने भी इसी विचार को पसन्द किया। इस तरह के काम घर से जितनी अधिक दूर किये जायँ, उतना

अच्छा।

घण्टी बजी तो सबको समय का ज्ञान हुआ। दरभंगा से ट्रेन छूट चुकी थी। लेकिन चौधरी ने कहा—हम सौराठ जाकर अब क्या करेंगे, सीतामढी न लौटना है हमें? मैं तो खैर घोड़े पर जाऊँगा। ये दोनो ट्रेन से दरभंगा और वहाँ से सीतामढी आ जायेंगे।

घटकराज को तो मधुबनी की ट्रेन पकड़नी ही थी। सौराठ का दंगल अभी दो रोज और था, तब यह कैसे होता कि घटकराज कहीं दूसरी जगह जाते?

पण्डित का मँझला लड़का तब तक दिखाई पडा। उसे भी तो इस ट्रेन से जाना था।

घटकराज का भी टिकट वही कटा लाया।

बच्चन को लौटकर घर आना था, लेकिन वह भी चौधरी के भगिना बाबू के साथ दरभगा तक जाने की बात करने लगा।

खोंखा पण्डित और घटकराज चौधरी को तनिक अलग ले गये और कहा—बाबू साहेब, यह भवितव्य[1] था। हमारी आत्मा तो तब तक शान्ति नही प्राप्त करेगी जब तक यह कार्य सम्पन्न नही हो जायेगा। अगहन में यह होके रहेगा।

चौधरी ऊपर-ऊपर मुस्कुराया।

ट्रेन आई, सौराठ जानेवाले मुसाफिर डिब्बो मे तो ठुँसे थे ही; पावदान पर खड़े—बाहरी हैंडल पकडे भी सैकडो लोग थे। सौ-पचास तो छत पर भी बैठे थे, गठरी-मोटरी समेत!

घटकराज को पावदान पर एक पैर टिकाने-भर जगह मिली, सो भी लड-झगडकर! पण्डित का मझला बेटा कछौटा बाँधकर छत पर चढ गया, वह वही बैठा।

इतने में पूरब (सकरी) से भी ट्रेन आती दिखाई पडी। पण्डित ने कहा—बच्चन, एक टिकट मेरा भी ले लेना हडाही[2] का।

बाबू साहेब खुद घोडा कस रहे थे।

१. होनहार। २. दरभंगा जक्शन का देहाती नाम।

अवसरों का उपयोग वह कर चुके थे, तथापि मुखियाजी के दालान पर अगली ही दुपहरिया को उन्हें पंचमुख होना पड़ा।

प्रसङ्ग मे ताप की मात्रा पराकाष्ठ पर तब पहुँची जबकि भीम ने कहा—सुपारी तनी दब[1] थी, मधुवनी के सेठ सागरमल के गोदाम में जैसी वढ़िया सुपारी मिलती है वैसी भला और कहाँ मिलेगी ? तिरपितवा महाकंजूस है···

तिरपित सहुआइन का बड़ा लडका था, घर का मालिक।

मुखियाजी वोले—हाँ हो ! सहुआइन का भी इसमें इशारा रहा होगा ! बाभनो को देना था न?

फतूरी काका इस पर वमक उठे—जमाना कैसा है सो नहीं देखते हो बाबू ? अगले ही बरख तो लड़कों का जनेउआ करोगे, देखूँगा, कैसी सुपारी आती है तुम्हारे यहाँ और कै-कै ठो देते हो लोगों को ! हाँ ! बीस-पचीस साल हुए, बिदेसर मल्लिक ने अपनी माँ के श्राद्ध मे भर-भर पन-बट्टा गोटा सुपारी सबको दिया था। गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव-भर तौलते तो छः से जास्ती सुपारी नहीं चढा पाते तराजू पर ! उसके बाद अब सहुआइन का ही यह साहस है कि सुपारी के इतने अच्छे दाने भर-भर अंजुली मिले हैं। ये भी मेंड-बकरी के नेड़ी[2] जैसे थे क्या ? तौल-कर देख लो, आठ-दस चढाओगे तो पउआ ऊपर जायेगा सीधे, हाँ ! ···

फतूरी कुछ और बोलते अभी मगर मुखिया ने बीच में ही उन्हें शान्त करने की चेष्टा की। उसने अनुनय के स्वर मे कहा—नहीं फतूरी काका, सुपारी बड़ी ही अच्छी थी। बड़ी बाजार (दरभंगा) में सबसे अच्छी दुकान है बाबूराम ढनढनिया की। तिरपितवा वहीं से सुपारी लाया था। अपनी दुकानदारी के लिए तो वह जहाँ-तहाँ से लाया करता है, मुदा यह तो धरम-पुन्न का काम था न···?

फतूरी की भौंहें ढीली पड़ चुकी थीं, भीमनाथ को हिकारत की निगाहों से देखते हुए उतरते सुर में वह वोले—और वेचारी सहुआइन

१. दलसिंगसराय और साहपूर-पटोरीवाले इलाके, जो लाल मिर्च और तम्बाकू की अपनी फसलो के लिए दूर-दूर तक मशहूर हैं। २. घटिया। ३. लेंड़ी, लेंड़ी।

लेता ही कौन ?···सभी की जुबान पर सहुग्राइन चढी रही चार-छै दिनों तक। चार-चार, छै-छै गोटा-सुपारी किसको नहीं मिला था ? जर-जवार के बिरादरी के अपने भाई लोगों का भारी भोज हुआ—दाल, भात, चार *तरकारियाँ, बड़ियाँ, बड़े, आम और आँवले का अचार,* दही, चीनी, पके हुए शरही और कलमी आम···थई-थई मच गई; लोग धन्न-धन्न कर उठे।

जहाँ देखो, सहुआइन की चर्चा !

—बडी भगतिन है।

—जनकपुर[1] और सिमरिआ[2] तो किसी साल नही छूटता।

—पिछले ही बरख बदरीनराएन हो आई है बुढ़िया ! गोड़ में घाव लेकर लौटी थी।

—अपने तो धरमतमा है; बेटा मुला[3] बडा परपंची है कि नाहीं बहिना ?

—सो तो हइए है, गे !

—पहिली उमिर में देवर को रखे थी।

—अपना आदमी बडा सीधा था, बिल्कुल गऊ !

—लडके तीनों अच्छा कमाते हैं।

—कमाएँगे नही ? मुखिया का अउर इन तीनों का पेट एक ही है··· मटिया तेल, चीनी, कपडा···सभी कुछ तो भकोसते हैं ! !

—पुतोहू बुढिया का मान-दान करती है ?

—छोटकिन[4] भी सिरिफ !

—गे मइयो ! !

फतूरी जाकर सहुआइन को कभी-कभी नचारी सुना आते, बदले में वह लडकों की नजर बचाकर सरइसा की नामी तमाकू के दो बढ़िया पत्त थमा देती; वह सँभालकर फिर ले आया करते।

सहुआइन के इस शुभ कार्य पर अपने विचार व्यक्त करने के अनेक

१. सीता की जन्मभूमि। २. सिमरिया घाट (गंगा)। ३. मुदा, लेकिन। ४. छोटी लड़की।

अवसरों का उपयोग वह कर चुके थे, तथापि मुखियाजी के दालान पर अगली ही दुपहरिया को उन्हें पंचमुख होना पडा।

प्रसङ्ग मे ताप की मात्रा पराकाष्ठ पर तब पहुँची जबकि भीम ने कहा—सुपारी तनी दब[1] थी, मधुबनी के सेठ सागरमल के गोदाम में जैसी बढ़िया सुपारी मिलती है वैसी भला और कहाँ मिलेगी ? तिरपितवा महाकंजूस है···

तिरपित सहुग्राइन का बडा लडका था, घर का मालिक।

मुखियाजी बोले—हाँ हो ! सहुग्राइन का भी इसमे इशारा रहा होगा ! बाभनों को देना था न?

फतूरी काका इस पर बमक उठे—जमाना कैसा है सो नही देखते हो बाबू ? अगले ही बरख तो लड़कों का जनेउआ करोगे, देखूँगा, कैसी सुपारी आती है तुम्हारे यहाँ और कै-कै ठो देते हो लोगो को ! हाँ ! बीस-पचीस साल हुए, बिदेसर मल्लिक ने अपनी माँ के श्राद्ध में भर-भर पन-बट्टा गोटा सुपारी सबको दिया था। गिरी ऐसी दमदार थी कि पाव-भर तौलते तो छः से जास्ती सुपारी नहीं चढा पाते तराजू पर ! उसके बाद अब सहुआइन का ही यह साहस है कि सुपारी के इतने अच्छे दाने भर-भर अंजुली मिले हैं। ये भी मेंड-बकरी के नेड़ी[2] जैसे थे क्या ? तौल-कर देख लो, आठ-दस चढाओगे तो पउआ ऊपर जायेगा सीधे, हाँ ! ···

फतूरी कुछ और बोलते अभी मगर मुखिया ने बीच मे ही उन्हें शान्त करने की चेष्टा की। उसने अनुनय के स्वर में कहा—नही फतूरी काका, सुपारी बड़ी ही अच्छी थीं। बडी बाजार (दरभंगा) में सबसे अच्छी दुकान है बाबूराम ढनढनिया की। तिरपितवा वही से सुपारी लाया था। अपनी दुकानदारी के लिए तो वह जहाँ-तहाँ मे लाया करता है, मुदा यह तो धरम-पुन्न का काम था न···?

फतूरी की भौंहें ढीली पड चुकी थी, भीमनाथ को हिकारत की निगाहों से देखते हुए उतरते सुर में वह बोले—और वेचारी सहुआइन

१. दलसिगसराय और साहपूर-पटोरीवाले इलाके, जो लाल मिर्च और तम्बाकू की अपनी फसलो के लिए दूर-दूर तक मशहूर हैं। २. घटिया। ३. लेंडी, लेड़ी।

का क्या कसूर था इसमें ? वह खुद तो सौदा करने गई नही ! ऍ।

होंठों के छोर कोंचिया[1] लिये और दाँतों को डयोढ़ा-सवाया करके नपुसक टोन मे भीम बुदबुदाया—सो कहाँ, फतूरी काका ! सो कहाँ कहता हूँ मैं—ई ई ई, ग्रो ग्रों ग्रो···मैं तो, मैं तो ऽ ऽ ऽ···

—जाग्रो भीम, तुम भी वोका ही रह गये !

फतूरी को ग्रब जाके हँसी ग्राई ग्रौर मुखिया भी उधार की मुस्कान ले ग्राया कही से।

तिरपित साहु ग्रपर प्राइमरी पास करके पढना छोड़ बैठा था। बाप की ग्रकाल मृत्यु ने कच्ची उमर मे ही डण्डी-तराजू पकड़ने को मजबूर कर दिया। दोनों भाई ग्रभी बहुत छोटे थे। वह तो माँ थी कि दुकान-दारी की लढिया चल निकली—दोनो माई-पूत सेर-बटखरे पर हावी रहते।

सहुग्राइन बड़ी लछमिनिया थी। जब से विधवा हुई तब से तो उसके भाग मानो खुल खेलने लगे। तिरपित का बाप सुचित छुटपन ही से पदरोगी[2] था, मिजाज का चिड़चिडा ग्रौर ग्रपने को सबसे बढकर बुधियार[3] समझनेवाला। जीते जी सुचिता ने ग्रपनी घरवाली की एक नही चलने दी थी।

सुचिता मर गया तो सहुग्राइन रोई तो काफी मगर भीतर-भीतर उसे उतना ग्रपसोच नही हुग्रा—सोना ग्रौर रूपा की काठी के जैसे तीन-तीन पूत थे, चार बीघा उपजाऊ जमीन थी, मजबूत कोल्हू ग्रौर मुठिया सीगवाले दो नाटे सिलेबिया बैल थे, भीतवाले दो मकान थे ग्रौर दुकानवाली बैठक थी। बाँहों ग्रौर जाँघो का ग्रपना भी पौरुख था। क्या नही था, सबकुछ था !

राम जाने देवर से सहुग्राइन का क्या सम्बन्ध था !

धर्मरितवा उसके घरवाले का सगा भाई हो सो बात नही, मगर दोनो मे बडा ही नेह-छोह रहा। वह सुचित साहु का दूर का चचेरा

१ कुंचित कर लिये। २. छोटी-छोटी बीमारी का हमेशा शिकार। ३. होशियार।

होता था। पड़ोस के एक गाँव से जब-तब आकर चलते कोल्हू के पट्टे पर इस भाभी के पास वह बैठ जाया करता···

सहुआइन भउहें चढाकर पूछती—कौन-सा पचमेर[1] धरा है वहाँ रजउली में जो कूकर की तरह बार-बार दौडे जाते हो ?

अमरितवा गर्दन झुकाकर चक्कर खाती हुई धरती पर अपनी निगाहो को जमाने की विफल कोशिश करता।

सहुआइन बीच-बीच मे पट्टर बँधी आँखोवाले बैल को टिटकारती जाती, वह नाटा-सँवलिया बैल अपनी द्रुत-विलम्बित गति मे अविराम चलता होता।

—अच्छा, बाबू, तुम तनी सँभालो कोल्हू, मैं कुछ ले आऊँ पानी-वानी···

—नही भाभी, रहने दो। खाके तो आ रहा हूँ।

—फिर झूठ ! फिर !

हल्की-मीठी एक-एक चपत देवर के दोनो गालो पर पड़ जाती, सिनेह और ममता का भूखा बाईस-चौबीस साल का अमरित इस पर भाभी के सामने अपने को बिछा देता···कोल्हू चलने की आवाज—ढें˘˘˘˘˘ च्चों ी ी ी ी ी ची ी ी ी ी ी···और भाभी की प्यार-भरी दुत्कार और दुधमुँहे भतीजे की किलकारियाँ···

अमरितवा चलते कोल्हू के खिसकते पटरे पर आँखें मूँदकर निश्चेष्ट बैठा रहता। बैल अपनी मद्धिम चाल पर पहुँचकर मशीन की तरह एकरस अविराम घूमता होता उसी चक्करदार परिधि में···

टाडा[2] कब का भर चुका है, उसकी गोल-मटोल ग्रीवा को नहलाता हुआ तेल अब धरती को स्निग्ध बना रहा है···

—मइया री मइया !

सहुआइन की चीत्कार अमरित को सतर्क कर देती। अपनी भूल समझकर वह सन्न रह जाता। भाभी दौड़कर कोल्हू के नजदीक पहुँचती,

१. पचमेल मिठाई (पाँच मिठाइयों—बालूसाही, इमर्ती, लड्डू, दर्फी और गुलाबजामुन का मेल)। २. तेल रखने का बर्तन (मिट्टी का)।

उकड़ूँ झुक जाती, भरा टाड़ा हटाकर अलग रख लेती और खाली टाड़ा कोल्हू की ठोरी से लगा देती। इतने में बैलवाले जुए का लम्बा डण्डा ऊपर से गुजरकर आगे बढ़ चुका होता और सहुग्राइन चक्कदार घेरे से बाहर निकल आती। .

मुस्कुराती हुई कहती—इसी से तो सतमाय[1] तुम पर विगड़ी रहती है! जाओ, इतना तेल हमारा धरती को चटा दिया तुमने!

फिर एक-एक वही चपत।

—भाभी, एक-एक चपत और!

सहुग्राइन को बरबस हँसी आ जाती। वह इस दुलरुवा देवर के अनुरोध को बेकार थोड़े जाने देगी!

—लो!

एक-एक और मीठी चपत!

—अब तो हुआ?

—ऊँ!

—जाओ, मछरी का तनिक भुर्ता और मुट्ठी-भर भात छिपिया[2] में निकाल आई हूँ, पानी भी लोटा में करके रख दिया है।

और, अमरित साहु जाकर भाभी का पर्साद पा आते!

पीछे यही अमरितवा अपनी सौतली माँ का साथ छोड़कर नौगछिया ही रहने लग गया। सुचित उससे कसके काम लेता, परन्तु भाभी की ममता ऐसी थी कि दो दिन के लिए भी कहीं दूसरी जगह जाना उसे बुरी तरह अखरता।

तिरपित, मीतन और जुग्गी—तीनों लड़के सहुग्राइन के अमरित साहु की ही गोद गरमा-गरम कर उभरे थे। घरों के दो ठाठ[3] उसकी कारीगारी के सबूत थे। सुचित मरा, पीछे साल-भर से अधिक अमरित सहुग्राइन के यहाँ नहीं रहा। हमेशा के लिए कहीं चला गया था।

खोंखा पण्डित के लिए धोतियों का बढ़िया जोड़ा पीले रंग में रँगाकर सहुग्राइन ने जाने कब से सँजो रखा था। पण्डित होते तो पहन-

१. सौतेली माँ। २. छोटी थाली, रिकाबी। ३. ठट्ठर, छप्पर का ढाँचा।

कर बाहर के दोनों पण्डितों के आमने-सामने बैठते और सहुआइन के इस शुभ कार्य की देख-रेख करते···माहे और दिगम्बर ने ऐसा खुरपात मचा दिया कि बेचारे गाँव छोड़कर चले गये थे।

जप-जग्ग, धरम-करम, पूजा-पाठ, भोज-भात···इन सब कामों से सहुआइन जब निबट चुकी तो एक रोज तिपहरिया वह पण्डिताइन के पास पहुँची। बाँस की रँगी खपच्चियों की डलिया मे सेर आधेक सुपारी और धोतियों का पीला जोड़ा लेती आई थी।

डलिया को सरकाकर पण्डिताइन के पैरों के करीब पहुँचा दिया और भूमि को छूकर मिट्टी माथे से लगाती हुई बोली—असिरबाद दो बुच्ची की अम्मा, यह चभच्चा जुग-जुग कायम रहे! पानी कभी न तो घटे और न खराब हो! हाय, सालो-भर पण्डितजी गाँव रहे और अब मेरे ही किसी पाप से यह सब खुरपात उठ खड़ा हुआ! पण्डितजी बाहर चले गये!! बड़ी लिलसा[1] से यह धोती मँगवाई थी, अपने हाथो से रँगकर —छाँह मे सुखाकर और चुनियाकर रखी थी कि पहनकर पण्डितजी उस रोज चभच्चे का जग्ग करावेंगे सो दैव को मंजूर नही था···बुच्ची की अम्मा, मैं उन्हें भला कुछ देने लायक हूँ? तुम्ही बताओ?

—भगवान ने तुम्हारा काम पारघाट लगा दिया, वह गाँव से बाहर हैं इसमें तुम्हारा क्या दोख? बिसेसरी का कपार फूट गया नही तो वह कही क्यों गये होते!

पण्डिताइन का स्वर दर्द मे डूबा हुआ था। चार-पाँच दिन बीत जाने पर भी लगता था कि बेचारी का कलेजा अब भी उबल रहा है। आँख के संकेत से उसने मझली बहू को बताया कि डलिया उठा ले जाय अन्दर और अपने को जरा सँभालकर बोली—मेरे परदादे ने तालाब खुदवाया था और दादा ने उसका जग्ग किया। उसके बाद, सहुआइन, तुम्हे ही देख रही हूँ यह सब करते! तुमने अपना इहलोक-परलोक दोनों बना लिया! हम क्या तुम्हें असिरबाद देंगे! हमारा तो अपना ही करम फूट गया है···

---

१ लालसा, चाह।

सहुआइन समझ गई कि पण्डिताइन का जी अभी तक बेकाबू है।

थोड़ी देर वह बैठी रही, बहुओं से इधर-उधर की बातें करती रही। फिर उठकर वापस चली आई।

बारह

बर्खा समय-समय और हिसाब से होती आई थी। अबकी खेती के रंग-ढंग अच्छे थे।

आधा सावन बीतते न बीतते लोग अपने-अपने खेत आबाद कर चुके थे। धान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पाँतर हरियाली का समुद्र हो रहा था। बयार सिहकती तो इस समुद्र की हरित-नील-लोल लहरियाँ सातों सागर की तरंगित सुषमा को मात कर जाती; खेतिहरों के मन-प्राण धान के लहराते पौधे देख-देख लहराया करते और भविष्य की सुनहली जालियाँ बुनने मे उनकी आत्मा विभोर हो जाती। जनपद की शस्यश्यामला प्रकृति-सुन्दरी अपनी ओर देखते रहनेवालों की बाहरी और भीतरी जलन छन-भर के लिए तो अवश्य ही मिटा डालती ...

तीज का त्यौहार आया और पण्डिताइन को रुलाकर चला गया। बिसेसरी की शादी हुई होती तो घर-आँगन गीत और उछाह में आज फिर गनगना उठता—मुदा विधाता ने ही जब इस छोकरी का कपार जला रखा है तो फिर नानी-नाना, मामी-मामा आखिर क्या करेंगे !

अपने दुखी मन को बहलाने के लिए बिसेसरी ने घर के पिछवाड़े की तरफ वाली खाली जमीन को खुरपी से खोद-खोदकर तैयार किया। उसमे लकेस, तारा, मधुरी और गेंदा के पौधे लगाये। ...

रामेसरी ने बाड़ी में तरकारियों के पौधे लगा रखे थे—भिंडी, तरोई, बैंगन, नेनुआ। अरुई और सूरन आप ही आप उग आये थे। दो पुश्त से इनकी खेती थोड़ी-कुछ पण्डित की बाड़ी में होती आई थी। सो, बीज न डालने पर भी बरसात के आरम्भ में सूरन और अरुई की पेंपी यों ही निकल आती।

तगर, कुमुदनी (छोटा कचनार), थलकमल, इन्द्रकमल, अड़हुल, कनेर, करवीर आदि कुछ झाड़ तो पण्डित के दालान के आगे ही थे और

कुछ बाड़ीवाली बगिया के अन्दर।

खोखा पण्डित का खानदान धर्मभीरु और पूजा-पाठपरायण विद्वान ब्राह्मणों का खानदान था। यह कुल कभी तो शक्ति का उपासक रहा होगा, अब लेकिन पंचदेवता[1] का उपासक था। कुलदेवता इन लोगों की भगवती उग्रतारा थी। इसलिए रंग-बिरंगे फूलों की आवश्यकता पडती ही रहती। किसी ऋतु में फूलों की कमी न पड़ जाय, इस दृष्टि से भी फूलों के अधिक से अधिक झाड़ लगाये जाते रहे होंगे।

मन्दार पहाड़ से पण्डितजी का पत्र आया था, वहाँ वह नवाह[2] भागवत पर बैठ गये थे। भादों मे गोड्डा के आसपास किसी गाँव में भागवत का एक पारायण और होनेवाला था। आसिन की दुर्गा-पूजा के दिनों में भागलपुर का कोई लखपति मारवाड़ी सप्तशती चण्डी का सम्पुट पाठ करावेगा, कातिक में डुमरिया की रानी साहेबा कातिक महात्म सुनेंगी··· टेढे-मेढे अक्षरों में खोखा पण्डित ने यही सब लिखा था।

चिट्ठी बँचवाके आदि से अन्त तक सुना तो पण्डिताइन को बड़ा ही परितोख[3] हुआ। वह भरके बोली—अब बूढ़ा अगहन तक आवें तो आवें। इस बार गिरस्ती का सारा भार बच्चों के कन्धे पर पड़ा। और तो कुछ नही, टुनाई की पढाई में थोड़ी-बहुत बाधा होगी।

होगी! हो रही है कि?—रामेसरी ने कहा तो माँ ने साँस खीची।

ओसारे पर बैठकर टुनाई भुना हुआ चिउड़ा तली हुई टेंगरा मछली के सहारे फाँक रहा था। आधा भरे मुँह से गलगलाती आवाज मे बोला—इस बार मैं पास नही करूँगा!

—अशुभ बातें क्यों निकलती हैं तेरे मुँह से?

पण्डिताइन ने बेटे को फटकारा।

—तो होठों को सिलाकर गूँगा बन जाऊँ?

तीखे स्वर में पण्डिताइन ने फिर डाँट बताई—फिर अलच्छ[4] बात! क्या हो गया है तुझे आज?

१. सूर्य, गणेश, दुर्गा, विष्णु और शिव। २. नौ दिनों तक चलनेवाला। ३. परितोष, सन्तोष, तसल्ली। ४. अशुभ, अलक्षण।

उड़द का बेसन लगाकर अरुई के पत्तों को लपेट रही थी रामेसरी, काट-काटकर थक्का बनाना था और धूप में उन्हें तनिक सुखा भी लेना था। माँ की फर्माइश थी, आज रात को रसोई में इसी का तीमन बनेगा। सो वह पत्तों की डण्ठल काटती हुई बोली—होगा क्या, गौरी तो कुछ करते-धरते नहीं, सारा काम टुनाई को करना पड़ता है।

गिरिजानन्दन, दुर्गानन्दन, श्रीनन्दन और यदुनन्दन···सँझला था गौरी। श्रीनन्दन था टुनाई का नाम और बुदुर का यदुनन्दन। बच्चन (गिरिजा) समस्तीपुर हाई-स्कूल में संस्कृत पढ़ाते थे। दुर्गानन्दन मधुबनी अदालत में किसी वकील का मोहर्रिर था। गौरी मैट्रिक तक पढ़ा हुआ और अब होमियोपैथी के माथे पर अपना हाथ रखने जा रहा था। टुनाई टेन्थ में और बुदुर मध्यमा के द्वितीय वर्ष में था।

बनिहार खोजना, बैलों को खिलाना-पिलाना, खेत में काम की निगरानी, काम पर कलेवा पहुँचाना, सुबह-शाम खेती को देख आना—किसी काम में गौरी हाथ नहीं बँटाता था। उस पर डाक्टर बनने की धुन सवार थी। ससुराल से हिन्दी मैटेरिया मेडिका उठा लाया था। दवाओं का एक छोटा-सा बक्सा कहीं हाथ लग गया। अब क्या था? छाती और पीठ की धड़कन बतानेवाली छुच्छी[1]-भर चाहिए थी, बस! मनीआर्डर से फीस भेजकर घर बैठे डिप्लोमा मिल ही जायेगा। प्रैक्टिस अपने हाथ की बात थी। वैद बनना कोई कठिन नहीं, लेकिन चूरन और बड़िया तैयार करना भारी झंझट का काम मालूम पड़ा। हटाओ बखेड़ा, होमियोपैथी ठहरी चिकित्सा की रानी···गौरी इसी को सिद्ध करने में लग गया। नतीजा यही हुआ कि खेती-बाड़ी का सारा भार बेचारे टुनाई के कन्धों पर आ पड़ा। और वर्ष इन दिनों पण्डित खुद मौजूद रहते तो लड़कों पर यह बोझ नहीं पड़ता था।

पण्डिताइन बिजनी[2] में किनारी लगा रही थी। सुईवाला हाथ उठाकर बोली—कल से टुनाई अपना पढ़े-लिखे मन लगा-लगाकर, देखती हूँ कैसे नहीं गौरी घर का काम करते हैं।

१ स्टेथस्कोप। २. पंखी।

अपने पति के बारे में यह ऐलान सुनकर छोटी बहू का मन छोटा हो गया। और तो कुछ वह कर नहीं सकी, खाना के लिए मचलनेवाले ढाई साल के बच्चे को रोष-भरी भंगी मे ठुनका दिया और बोली—खा मेरा कप्पार!

बच्चा रो पड़ा।

उधर से सास बोली—मउगी[1] का मिजाज सनक गया है! उठकर लड़के को खाने को देती कुछ सो तो हुआ नहीं, टुड्डी में जोर का एक ठुनका[2] दे दिया!

टुनाई नाश्ता कर चुका था। बाहर निकल आया। बुदुर पहले ही निकल चुका था।

गाँव के बाहर मैदान में लड़के गेंद खेल रहे थे। जो गेंद खेलने में भाग नहीं ले पा रहे थे, उनकी कबड्डी चल रही थी। तमाशबीन उतने नहीं थे जितने खेलनेवाले।

टुनाई को आते देखकर माहे खेल से हट आया। नजदीक आकर बोला—आज कई दिनों से मैं तुम्हें खोज रहा था। बड़ा जरूरी काम है। जल्दी में तो नहीं हो?

ऐसा कौन जरूरी काम आ पड़ा?—टुनाई के दिमाग का कलपुर्जा गार्ड की सीटी के बाद इंजन की तरह छुस-छुस कर उठा। दो महीने हुए, वे आपस में बोले नहीं थे। भेंट हुई हो और जान-बूझकर न बोले हो या एक-दूसरे से मुँह फेर लिया हो, बात ऐसी नहीं थी। खेती-गिरस्ती के दिन थे। माहे भी अपने कामों में पिचास[3] की तरह पिला पड़ा था। वह सिर्फ मैदानी खेतिहर नहीं था। अपनी किसानी से भी गाँव के लिए उसने नया आदर्श कायम किया था, नयी परम्परा स्थापित की थी। धरती को माहेश्वर ने तन और मन की समूची क्षमता लगाकर पकड़ रखा था। चार कट्ठा भीठा[4] खेत थे उसके पास, ग्वालों की टोली के नजदीक। तीन वर्षों से जमीन के उन तीन टुकड़ों पर माहे ने मानो पसीना बहाया

१. औरत। २. पहली-दूसरी उँगलियों के सहारे हल्का घूँसा। ३. पिशाच, भूत। ४. ऊँचा और भुसभुसा।

होगा, उपज भी खूब हो रही थी—आलू और तम्बाकू। उन फसलों से दो-ढाई सौ की सालाना आमदनी थी। यह रकम घर के फुटकल खर्च के लिए काफी होती। घर के पिछवाड़े जो वाड़ी थी उसमें तो चार-चार, पाँच-पाँच फसलें उगाता था। उसकी रसोई में दाल का खर्च नहीं, नित्तह[1] साग-सब्जी—नित्तह तीमन-तरकारी। झिङ्नी (तरोई), रमझिङ्नी (भिंडी), भाँटा (बैंगन), मूर (मूली), कोबी (गोभी), करेला, अरुई, ओल (सूरन), आलू, हरी मिर्च···क्या खरीदना पड़ता था उसकी माँ को? एक्को चीज नहीं! चार-छै थम केला के लगा रखे थे सो उनका भी वंश-विस्तार होता ही आया था। धान के अपने खेत दो ही बीघा थे माहे के पास—चालीस मन से कम तो कभी नहीं उपजाया उसने, कभी साठ और कभी पचास मन···प्रसंग छिड़ने पर दर्द-भरी आवाज मे वह कह उठता—सिंचाई और निकासी का इन्तजाम यदि कांग्रेसी सरकार कर दे तो इन्हीं चार कट्ठा खेतों में १२५ मन धान उपजाकर दिखला दूँ मैं!···काम लेते समय मजदूरों को अच्छा कलेवा देता था। मजदूरी में उसके यहाँ से कभी घटिया किस्म के दाने नहीं दिये गये। एक बैल और एक गाय रखे हुए था, वे अपनी तन्दुरुस्ती के लिए नौगछिया की समूची वस्ती के मवेशीवालों लिए नमूना थे। हलवाहा, हल और बैल एक दूसरे किसान के साथ भाँज[2] में चलता था।

सो, टुनाई ने सोचा—ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी है कि माहे खेत छोड़कर उससे बातें करने आया है?

टुनाई ने कहा—जल्दी में होता तो इधर क्या करने आता?

माहेश्वर के होंठों पर मुस्कान उभर आई, दाँतों की अगली कोर दिखाई दे गई।

टुनाई का बदन खाली था। माहे की देह पर अधबहियाँ बनियायन थी। दो-एक दिन पहले ही बदली हुई पीली जनेऊ गले से लिपटी हुई थी। कपार पर बाईं ओर घोड़े के खुर का वही सनातन निशान था, बचपन की किसी दुर्घटना का स्मारक।

१. नित दिन, हर रोज। २. बारी, सहभाव।

टुनाई के कन्धे पर माहे ने अपना दाहिना हाथ डाल दिया और ले चला उसे मैदान के छोर की तरफ।

आगे दूब पर बैठ गये दोनों।

एक दूब नोंचकर माहे ने उसकी दो पोर खोंट ली नाखूनों से, उसे उसने मुंह में डाल लिया। चबाता हुआ बोला—बिसेसरी के बारे में क्या सोच रहे हो तुम लोग ?

—क्या सोचेंगे ! सोचने और होने मे भारी अन्तर है माहे, कि नही ?

—सो तो हइए है !

—तो फिर ?

—आखिर इस झंझट से छुटकारा पाने का कोई रास्ता तो निकलना ही चाहिए, कि नही ?

—नही कौन कहेगा इसमें ?

—तब ?

टुनाई चुप हो रहा था। वह क्या जवाब दे माहे को ? परिवार की गति-विधि नियमित करने मे अभी उसका क्या हाथ होता है ? कुछ नहीं।

इतना टुनाई को अच्छी तरह मालूम हो चुका था कि बिसेसरी का ब्याह अब कोई आसान काम नही रह गया है। चतुरानन चौधरी की तरफ से इधर लोगों में यही बात फैलाई गई थी कि वह नौगछिया से शादी कर आये हैं, अगहन मे गौना होगा। इस प्रचार का फल यह हो रहा था कि टुनाई के बड़े और मझले भाइयों ने रिश्ते के लिए फिर से जहाँ-जहाँ बातचीत शुरू की थी, बाद को उन सभी जगहों से जवाब का बँधा-बँधाया गोला छूटने लगा—ब्याही लड़की को दुबारा ब्याह कर अब और कितना कमाएँगे पण्डितजी ? जो बात कही नही हो पाई वह अब नौगछियावाले करने जा रहे है ?···

बीच मे टुनाई किसी काम से दरभंगा गया था। वापस आते समय दरभंगा प्लेटफार्म पर एक आदमी से अकस्मात् परिचय हुआ तो वह मानिकपुर-गढ़िया का निकला। हास-परिहास की मुद्रा में उसने पीछे कहा—चलिए, पान खा आवें बाहर से। आप तो हमारे चतुरा बाबू के कुटुम्ब-नारायण ठहरे ! पचास-साठ वर्ष बाद यह रिश्ता हमारे और

आपके बीच कायम हुआ है। महारानी जनक-लली[1] की अनुकम्पा से ही यह काम हुआ समझिए'''उसने टुनाई का हाथ पकड़ा और पुल की ओर खींच ले जाना चाहा। टुनाई दुहरे संकट में पड़ गया! पिता का नाम क्यों बता दिया? मगर इस पर चुप रह जाना भी बउड़मपना होगा और बाहर चलकर इस आदमी के दिये हुए पान के बीड़े स्वीकार करना तो बेवकूफी की हद हो जायेगी! कैसा रिश्ता और कुटमैती[2]!'''

टुनाई पहले खुद सँभला, पीछे कड़ी आवाज मे उस आदमी को झाड दिया—भंग तो नही पी आये हैं आप! किसने बताया कि चतुरा चौधरी की शादी हमारे घर हुई है? मेरे पिताजी उन्हें ले जरूर आये थे, पर घर के और लोगों को वह जँचे नही। हमारे गाँव के पढे-लिखे नौजवानो ने समझा-बुझाकर चौधरीजी को विदा कर दिया, उधर लडकी की तबियत एकाएक खराब हो गई थी। कई कारणों से यह ब्याह हुआ नही, टल गया।

दाँत चियारकर वह टुनाई का मुँह ताकता रहा थोड़ी देर तक, फिर हँसने लगा—ही ही ही ही हू हू हू हू हू हू?

छन-भर बाद बोला—चलिए पान तो खा आवें! छिलका छुडाने से बात यह पतली थोड़े हो जायेगी? ब्याह अभी नहीं हुआ है तो आगे होके रहेगा, आ[3] कि नही?

उस सनकी से बहस करना बेकार था। टुनाई उसकी नजर बचाकर दूसरी ओर जाकर ट्रेन की प्रतीक्षा में खडा हो गया था।

इस प्रकार की बातें गाँव के और कई लोगों को सुननी पडी थीं। इस तरह की अफवाहें चतुरा चौधरी के आदमी खूब फैला रहे थे।

टुनाई का समूचा परिवार इससे घबड़ा उठा था। औरत-मर्द सभी हाथ जोडकर भगवान से मनाया करते कि चाहे जैसे भी हो विसेसरी का ब्याह अगहन के लगन में अवश्य हो जाय। पण्डिताइन ने आँचल पसार कर और मत्था टेककर जोडा छागर[4] कबूला था दुर्गामाई के आगे। बच्चन

१. सीता; सीता की जन्मभूमि होने से उधर कुछ लोग बात-बात में सीता का नाम लेते हैं। २. सम्बन्ध, कुटुम्बिता। ३. या। ४. तरुण बकरा, पाठा।

ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगाजल भरकर पैदल पहुँचेगी और अपने हाथों से बाबा बैदनाथ को नहलायेगी।

कुछ मनउती बिसेसरी की भी थी क्या ?

थी कि ! अवश्य थी !

नही भला कुछ कैसे होती ?

तो क्या थी बीसो की अपनी मनउती ?

बिसेसरी की मनउती यही थी कि आनेवाले अगहन मे अगर कोई बीस या बाईस-साला दूल्हा उसके लिए मिल गया और शादी हो गई तो वह चाँदी की छोटी-सी खूबसूरत बसुली[1] गढवायेगी सुनार से और बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथों में थमा देगी…

टुनाई देर तक चुप रहा। पारिवारिक मुसीबत के बीसोवाले पहलू पर बार-बार सोचता रहा। यह संकट उससे छिपा हो सो बात नहीं थी। माँ की तन्दुरुस्ती इधर गिर रही थी। बहन के व्रतों-उपवासों की संख्या बढ़ गई थी। बिसेसरी के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा था इन बातो का…

टुनाई माहे की ओर बीच-बीच मे देख लेता था। वर्षा के पानी का रेला दूब की गुच्छियों में छपरिहा[2] खर के कुछ टुकड़े कभी उलझा गया था, वे अब भी जस-तस उनमें फँसे-अटके पड़े थे। खर का एक छोटा टुकड़ा उठाकर टुनाई ने हथेली पर उसे फिराया, मिट्टी झर गई तो वह उससे कान खोदने लगा।

—कब तक कान खोदोगे ?

टुनाई जवाब में फिर कुछ नही बोला। उसकी यह स्थिति देखकर माहे ने तय कर लिया कि अभी नयी योजना की भनक टुनाई के कानों में न पड़े तो अच्छा। यह मल्हू[3] कुछ का कुछ समझ लेगा।

—चलो टुनाई, अभी हम लोग कबड्डी खेलें। बातें फिर कभी कर लेंगे। बात कोई खास तो थी भी नही…

१. बाँसुरी, बंशी। २. छप्पर से झड़े-पड़े व गिरे-टूटे। ३. मूर्ख, बुद्ध

माहे ने टुनाई का हाथ पकड़ा। दोनों उठ गये।

तेरह

पण्डित का दूसरा लड़का दुर्गानन्दन था तो एक मामूली वकील का मोहर्रिर मगर समझदारी उसकी काफी तेज थी। वह ताड़ गया था कि चतुरा चौधरी भीतर ही भीतर बेहद खीझ गया है। बिसेसरी का ब्याह किसी और दूल्हे से न हो, उसकी कोशिश रहेगी। झख मारकर हम अपनी भांजी को चतुरा चौधरी के चरणों में अर्पित कर दें— मनिकपुर-गढ़ियावाले तो यही चाहेंगे!

टुनाई की तरह दुर्गानन्दन की भी चौधरी के किसी गाँववाले से भेंट हुई थी। शादीवाली बात दुर्गा ने चुपचाप सुन ली थी। कहनेवाले तो ऐसा कहते हीं, किसका मुँह वह मूँदता फिरता?

पेशा उसका ऐसा था कि रोज सैकड़ों नये चेहरे नजर आते। जान-पहचान भी उसकी खूब बढ़ी हुई थी। पढ़ा-लिखा तो मामूली था, चतुर खूब था। पचाढ़ी महन्थ के विद्यालय में रहकर और वैरागी महंत का खाना खाकर दुर्गा ने व्याकरण की मध्यमा पास की थी। एक सहपाठी[1] का बड़ा भाई मधुबनी कोर्ट में किसी वकील का मोहर्रिर था। वह एक बार अपने भाई से मिलने आया तो दुर्गानन्दन की बातों से बड़ा ही प्रभावित हुआ। घर की स्थिति से परिचित हो उसने दुर्गा से कहा— "क्या करोगे शास्त्री और आचार्य की परीक्षाएँ पास करके? अब तो जमींदार पण्डितों को वर्षभिक्षा[2] भी नहीं देते! जहाँ के लोग पहले भागवत की कथा सुनते थे, वहाँवाले नजदीक के शहरों में आकर सिनेमा देख जाते हैं। पण्डितों की क्या कमी है? गेहूँ सस्ता होता है तो घर-घर सतनराएन भगवान की पूजा होती है। सो, पण्डित सस्ते हो गये हैं तो शान से लोगों की अरुचि हो गई है। चलो, तुम मेरे साथ महीना-भर रहो, फिर देखना। अपना खरच छोड़कर बीस-पचीस तो अगले

१. साथ पढ़नेवाला। २. हर साल एक मुश्त दी जानेवाली भिक्षा की रकम जो कि बड़े दरबारों में पण्डितों के नाम बँधी होती थी।

ही महीने बचाने लगोगे, हाँ !…" यह सुनते ही दुर्गानन्दन की मगजी उलट गई। घर का हाल खस्ता था ही। पूरा दिन पूरी रात वह सोचता रहा—क्या बुरा है, खा-पीकर पन्द्रह रुपैया भी यदि हर महीना घरवालों को वह देने लगे तो यह भारी काम होगा। जिस परिवार में पन्द्रह प्राणी खानेवाले और कमानेवाले हो बस दो जने, उसे भगवान ही सँभालें तो सँभला ले जायँ ! आदमी के बूते की बात नहीं है यह…अगले ही दिन दुर्गा अपने सहपाठी के बड़े भैया के डेरे पर पहुँच गया और तब से वह मधुबनी में डटा था। खा-पीकर तीस-पैंतीस बचा लेता था, कभी-कभी चालीस तक। दो वर्ष हो रहे थे उसे इस पेशे मे, अब तो खैर फर्राट हो गया था। मुख्तार का हाता कूदकर वकील के हाते में आ चुका था। दुर्गानन्दन का विश्वास पक्का हो चला कि यह काम बाबू (पिता) और बच्चन से नहीं होने का। बाबूजी पैंसठ से ऊपर की उमिर के हो गये, जमाने की रफ़्तार को पकड़ पाना उनके लिए असम्भव है। भइया ठहरे ठेठ पण्डिताऊ ढंग के आदमी। उनकी भी अकिल 'गजः-गजौ-गजाः' और 'गच्छति-गच्छत:-गच्छन्ति' से आगे नहीं बढ पाती। गौरी अभी बछेड़ा है। टुनाई और बुदुर छोटे हैं…तो फिर बिसेसरी का ब्याह कैसे होगा ? ऊँ हूँ ! दुर्गानन्दन को स्वयं मुस्तैद होना पड़ेगा। अगले अगहन में यह काम जरूर हो जाना चाहिए।

दुर्गानन्दन नयी उमर के लोगों पर टोह-निगाह रखने लगा। अंग्रेजी पढ़े लड़के कीमत में छेत्तर[1] के पट्ठ को मात कर रहे थे, यह तो उसने सौराठ में आँखों देखा था। साधारण पढ़ा-लिखा हो और डेढ-दो बीघा जमीन का किसान हो, मुखडा अच्छा हो और उमिर पच्चीस से जास्ती न हो…बस, अपने तो ऐसा लड़का चाहते हैं ! दस-बीस रुपया देना भी पड़े तो भी ऐसे युवक को उठा लायेंगे।

—बाप और भाई की राय नहीं लोगे ?

—और ऐन मौके पर लडके का गार्जियन भड़क गया तो ?

—तुम्हारे दरवाजे पर फिर कौन अपनी इज्जत गँवाने जायेगा ?

[1] हरिहर क्षेत्र (सोनपुर, बिहार) हाथियों का सबसे बड़ा मार्केट है।

—दिगम्बर और माहे वगैरह से क्यों नही इस काम में मदद लेते हो ?

—अरे हाँ, इनसे हमारी क्या दुश्मनी ! उस रोज दिगम्बर और माहे ने जो कुछ किया सो अपने लिए थोड़े किया ?

—गाँव-भर की नाक कट रही थी, साबित रह गई !

—दिगम्बर और माहे हमारी बिसेसरी के लिए कुछ न कुछ जरूर सोच रहे होंगे कि नही ?

—सोच रहे होंगे कि !

दाहिनी कनपटी के ऊपर पीतल की घिसी निबवाला उखड़े रंग का होल्डर खोंसे बाबू दुर्गानन्दन मोहर्रिर यही सब सोच रहे थे।

भीतर दोएम मुसिफ का कोर्ट।

बाहर बरामदे मे खचाखच भीड़। दो-ढाई हाथ अन्दाज रास्ता के लिए जगह छूटी हुई।

बरामदे पर लम्बाई में दोनों ओर मोहर्रिर और स्टाम्प बेचनेवाले अपनी-अपनी दरी बिछाये हुए। बीच-बीच में कही एक-आध छोटी तख्त-पोश भी। किसी पर लुढकी स्याही का धुँधला निशान तो किसी के छोर पर बारीकी से खिंची हुई चाकू की छोटी-छोटी घनी लकीरें—मुवक्किल या गवाह ने तम्बाकू के सूखे-बडे पत्ते को खैनी बनाने के लिए काटा होगा, पास ही चूना का भी चेन्ह[1] मौजूद था। अपनी छाती पर कत्था-चून से लिभड़ी हुई उँगलियों का छापा लिये हुए पावे पान के शौकीनों को फिर भी घूर रहे थे। शोरगुल और मिश्रित ध्वनियों की एक अजीब गूँज अदालत को अनाज और तिलहन की मण्डी बनाये हुए थी। सियाराम-कीर्तन, विदेसिया नाच, हनुमान चलीसा, भरथरी चरित्र, नागलीला, दानलीला, किस्सा तोता-मैना, किसा सवाचार यार, सत्यनारायण कथा, दुर्गा सप्त-शती, श्रीमद्भगवद्गीता, सुन्दरकाण्ड रामायण (तुलसीदास), मैथिल श्राद्ध-विवाह-पद्धति, जतरा-सगुन विचार, पहाड़ा (बाराखड़ी)…वगैरह बेचने वाले दो-तीन छोटे बुकसेलर जूट के छोटे टाट पर अपनी-अपनी दूकान सजाये बैठे थे। दो-एक ऐसे भी दूकानदार थे जो चाकू-कैंची, अलीगढ के

१. चिह्न, निशान।

ताले, सुइयाँ, बटन और धागों की गोलियाँ जैसी चीजें फैलाये हुए थे। बीचो-बीच रास्ते के लिए जो जगह छूटी हुई थी, उस पर से तरह-तरह की सूरत-शक्लवाले गुजर रहे थे। सामने दाढ़ी-मूँछ सफाचट या फिर बड़ी-बड़ी मक्खियों जैसी मूँछोवाले मगर पीछे चुटिया की ढाई-तीन तोला गाँठ लटकाये हुए; तेल में चपचप करती हुई छँटे बालों की सत-महला पट्टियाँ और नाक पर से लेकर कपार के ऊपरी छोर तक पीली मिट्टी का लम्बा उँगलिया रेख और गले मे सरसों जैसे बारीक दाने वाली वैष्णवी कण्ठी; दाढ़ी नही लेकिन मूँछें मशीन से छँटी हुई और कपार में सेँदुर का गीला टीका; नेपाली बकरी जैसी पतली-लम्बी दाढ़ी, मूँछें छँटी हुई और दुपलिया टोपी माथे पर; चोटीविहीन, खाली सिर, दाढ़ीमूँछ सफाचट—पैंट लेकिन सबके थे। बाकी कोई चपकनधारी तो कोई कोटधर···ये लोग मधुबनी अदालत के वकील थे। मुख्तारों की आमदनी बहुधा वकीलों से कम हुआ करती है, इसका असर उनकी शान-शौकत पर पड़ता है। यहाँ भी मुख्तारों का वही हाल था।

कि इतने में मोकिल[1] आकर दुर्गानन्दन से अपने मुकदमे की अगली पेशी का दिन पूछने लगा।

एक बार पूछा, दो बार पूछा। तीसरी दफे मोकिल भभाकर हँस पड़ा।

जोर की हँसी ने मोहर्रिर का ध्यान भंग किया तो वह बोला—क्या पूछते हैं?

मोकिल अधेड़ उमर का गोरा-छरहरा मुसलमान था। उसने मुस्कुराके कहा—अपने मुकदमे की अगली पेशी की तारीख मैं किससे मालूम करूँ? यहाँ तो डूबा हुआ है लैला की याद में मजनू···हः हः हः हः!

नही शेखजी!—दुर्गानन्दन झेंप गया।

—तो क्या सोच रहे थे आप?

—एक घरेलू झमेला आ पड़ा है, शेखजी!

१. मुवक्किल।

—तिरिया चरित्तर का झमेला न ?

—मखौल नही शेखजी, अपनी कसम !

मुवक्किलो से मुहर्रिरों का हास-परिहास कोई अनहोनी बात तो थी नही। यही तो चीज है जिससे अदालत की मनहूसी फटती है। पेशेवर एकरसता को जिन्दगी का रंगीन और जायकेदार मिक्श्चर इस तरह कभी-कभी खुशगवार न बना ले तो दुनिया नरक ही नरक रह जायेगी।

दुर्गानन्दन की चेतना ने स्फूर्ति हासिल की शेख की इस टॉनिक से। पाकिट से गीता प्रेस वाली डायरी निकालकर वह बोला—२० अगस्त, सोमवार···और जरा पहले आ जाइएगा। वकील साहब को उस रोज बहुत-सारे काम करने हैं; चार केसों मे उस तारीख को उनकी बहस होनेवाली है···और हाँ···

शेख ने एक चवन्नी अपने मोहर्रिर की मुट्ठी मे गोंज दी।

आज के लिए थोडे कहा है ?—मोहर्रिर बोला और मुस्कुराने लगा।

—तो ?

—अजी, अगली पेशी के दिन से मेरा मतलब था।

—समझ गया।

—हूँ ! खलास बैटरी से काम नही चलेगा उस रोज ! मसाला भरा रहे; हाँ शेखजी, समझे न ?

शेख का चेहरा भारी हो उठा तो मोहर्रिर की टोन बिल्कुल बदल गई—अजी, जास्ती नही। बीस-पचीस में उस तारीख का सारा काम निबटा दूंगा, आप कुछ फिकिर मत कीजिए।

—अभी तो समन तक नही पहुँचा है गवाहों के पास !

—यह बात है ?

—और नही तो ?

—निकालिए एगो रुपइया ! सिरिस्तेदार और समन ले जानेवाला सिपाही—दोनों को अठन्नी और चवन्नी चटानी पडेगी, मैं कई बार जा-जाकर उन्हें ताकीद करूंगा। तब कही समन बरामद होंगे और गवाहों तक पहुँचेंगे। कितनी दौड़-धूप मुझे करनी होगी ! चाहिए तो

डेढ़ रुपइया, मगर निकालिए आप एक ही कलदारम्···

—मेरे पास तो अब लारी का भाड़ा-भर रह गया है !

—ऊँ हूँ ! फिर कैसे होगा ?

—तो किसी पड़ोसी या जान-पहचान के आदमी को देखता हूँ··· दुर्गा बाबू, आप ही कोई इन्तिजाम कर लीजिएगा, अल्ला की कसम ! मैं दे दूँगा पीछे···

—नहीं जहदल्ली[1] शेख, इस बखेड़े में मैं नहीं पड़ूँगा। किस-किस मोकिल के लिए मैं उधार पैसा मांगता फिरूँ और असूल-तहसील का एक नया खाता खोलूँ ! न हो तो आज रहने दीजिए, चार रोज बाद आइयेगा, काम हो जायेगा।

शेख उठा झख मारकर आखिर !

दुर्गानन्दन भी उठे। ऊपर सीध में उठाकर बाँहों का झटका दिया, साँस को थमकाकर समूचे बदन को कड़ा किया और जँभाई ली। फिर पान की दूकान की ओर बढ़े।

तिर्छे टँगे आदमकद आइने में साँवली सूरत का जो चेहरा दिखाई दिया उससे दुर्गा को अचरज हुआ।

—अरे, यह तो दिगम्बर है !

नजदीक आकर दुर्गानन्दन ठमक गया। पान के चार बीड़े मुँह में कोंचकर ऊपर से जर्दा डालके दिगम्बर ने निचली जेब से चमचमाती अठन्नी निकाली। उधर नजर पड़ते ही तमोली मुस्कुराया, होठों को ड्योढ़ा करके इन्कारी मुद्रा में उसने भारी-सा माथा हिलाया।

—नहीं है चेंज !

—वाह, क्यों नहीं है ! ···अकस्मात् पीछे से एक हाथ बढ़ आया आगे, तमोली के सामने झकाझक पीतल मढ़ी छोटी चौकी पर एक धूमिल मगर अनघिसी दुअन्नी रख दी गई···खट्ट।

दिगम्बर ने गर्दन घुमाई, दुर्गानन्दन से आँखें मिलते ही मुँह से निकला—पर्नाम दुर्गा बाबू।

१. जाहिद मशो।

—दिगो, यहाँ कैसे रे ?

—गिलसेन[1] में कुछ सामान लेना है।

—क्या-क्या ?

—उड़द, लाल मिर्च, काली मिर्च, जीरा…

—अब आज नहीं जाने दूँगा, कल सवेरे खा-पीके अपना चले जाना !

—अँदेशा के मारे माँ जो परान[2] तेआग देगी।

—नहीं रे दिगो ! राम के लिए कौसल्या की जान जब नहीं निकली तो तेरी माँ का क्या होगा ?

यह कहते-कहते दुर्गानन्दन को भी हँसी आ गई और दिगम्बर के रँगे होंठ दुहरे-तिहरे हो उठे।

तमोली तब तक दुर्गा को भी पान दे चुका था।

दुर्गानन्दन ने दिगम्बर के कन्धे पर अपनी एक बाँह डाल दी और चलते-चलते गाँव-घर के हालात मालूम करने लगा…गोनउड़ा की दादी मर गयी थी…चोर फतूरी काका की बाड़ी से तीन कटहल तोड़ ले गये थे…रामेसरी को हल्का-सा बुखार आया था…गौरीनन्दन लहेरियासराय से होमियोपैथी की दवाएँ खरीद लाये हैं…

उस रोज सनीचर था, अदालत कुछ पहले ही उठ गई। अपनी जगह पर आकर दुर्गानन्दन कुछ देर दिगम्बर से इधर-उधर की बातें लड़ाता रहा। इसी बीच वह जहदल्ली शेख चुपचाप एक रुपइया दे गया। कुछ कहने लगा था कि दुर्गानन्दन ने नजर मारकर इशारा किया—सब ठीक हो जायेगा अब; और बाईं हथेली उठा—फैलाकर बेफिक्र रहने का आश्वासन दिया।

—इसी के लिए मैं रुका था दिगो !

—तो चलिए न अब !

दुर्गानन्दन ने बस्ता लपेटा। अलग एक टट्टऊ[3] घर में कुछ बेढंगी सन्दूकें पड़ी थीं, एक को खोलकर उसमें अपना बस्ता रख

१. ग्रियर्सन मार्केट (मधुबनी, जि० दरभंगा, बिहार)। २. प्राण त्याग देगी; जान दे देगी। ३. भीत की जगह बाँस की फट्ठियों की बनी झाड़वाले।

दिया। दफ्तियोंवाली छोटी फाइल साथ रख ली। बोला—अब चलो भइया !

सूड़ी स्कूल के पास दुर्गानन्दन के वकील साहब का डेरा था। बैठक वाले बाहरी हिस्से में दो कोठरियाँ थीं। एक पर दुर्गा का कब्जा था। यों तो इस रूम में भी फूटे शीशोंवाली दो बूढ़ी आलमारियाँ थी, उनमें बँधे-बेबँधे कानूनी पोथे अव्यवस्थित रूप में पड़े थे। फिर भी दुर्गानन्दन ही इस कोठरी का सर्वाधिकारी था, क्योंकि ताला लगाकर दो-दो तीन-तीन दिन मधुबनी से बाहर रह सकता था।

बरामदे में कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं। बाजार के लिए कोठरी से बाहर निकलते समय दुर्गा ने हाथ बढाकर कहा—यहाँ, दिगो, वकील साहेब बैठते हैं।

बाजार जाकर दोनों सौदा कर आये, दुर्गा ने नहीं माना···आग्रह-पूर्वक हलवाई की एक दूकान में ले आकर जब बैठा ही दिया तो बाबू दिगम्बर को नाश्ता करना पड़ा। टकही कचौड़ियाँ मुरमुराते हुए दिगो ने कई बार कहा—क्यों इतना खर्च करते हैं दुर्गा भैया ?

—अरे, तुम क्या रोज आते हो ?

ऊपर से चार-चार बीड़े पान के।

ऐसा नहीं कि पण्डित दुर्गानन्दन झा ने साथ नहीं दिया हो ? साथ दिया और हँसते-खेलते !

लौटकर डेरे पर आये। बातें होती रहीं, फिर बीच में उठे दोनों जने और जाकर खा आये बूधन झा के होटल से। दुर्गा इस होटल का माह-वारी मेम्बर था ही। दिगम्बर मल्लिक थे गेस्ट।

बरामदे में अपनी कोठरी की ओर ही कम्बल बिछाया गया, फिर दरी।

—तकिया एक है तो क्या हुआ ? मैं अपने लिए कपड़े डालकर झोले को ठीक कर लेता हूँ, तुम तकिया पर माथा रखकर आराम से सो जाओ !

—नहीं, दुर्गा भाई ! ऐसा भी कहीं होने का ?

दोनों अगल-बगल लेटकर देर तक बातें करते रहे।

आज बिसेसरी के बारे में चिन्ता के दो पृथक् सूत्र एकजुट हो गये थे। आगे क्या रास्ता है, इस पर खुलकर गप्प हुई थी।

अगहन में जैसे ही बिसेसरी की शादी होगी ही। बिसेसरी के लायक दूल्हा नहीं मिलेगा! मिलेगा क्यों नहीं? और चतुरा चौधरी? अरे, उस दुमघिसे गीदड़ की बात छोड़ो। वह भूंक-भूंककर अपनी मांद में सर पटकता रह जायेगा...

चौदह

आसिन का महीना!

पितरपच्छ के दिन आ गये थे।

आज मातृनवमी थी। अपनी-अपनी माँ, नानी, सास, दादी और परदादी के निमित्त सबको एक-एक ब्राह्मण चाहिए था। इतने ब्राह्मण कहाँ से आवें?

माहेश्वर का नौ घरों में न्यौता था। बूलो का सात घरों में। गौरी-नन्दन, दुनाई, बुदुर—किसी को भी पाँच-पाँच से कम घरों में नहीं जीमना था।

पण्डिताइन ने अपनी नानी, सास और सतिया[1] सास के लिए चार ब्राह्मणों को न्यौता दिया—चारों छोकरे बामन थे क्योंकि सयानी मूर्तियों के लिए भोज्य वस्तुएँ काफी और अच्छी अपेक्षित होतीं। शास्त्र में कहीं ऐसा तो लिखा है नहीं कि भूख से कुलबुलाते अधेड़ ब्राह्मण के समक्ष तीन-तीन पत्तलों की खाद्य-सामग्री एक ही पत्तल पर परोस देनी चाहिए अन्यथा पितरों की तृप्ति नहीं होगी। गले में जनेऊ रहनी चाहिए, फिर उमर यदि पाँच की भी हो और जन्म हुआ हो ब्राह्मण वंश में तो देवता और पितर लाख झख मारें, आपको ब्रह्मभोज में सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार है।

बूलो की भाभी ने अपनी माँ और सास के निमित्त पकी उमर के दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया था और ताकीद कर दी थी कि वे पहले

१. सौतेली

दही के घर जीमेंगे। जिनके ब्राह्मण बटुकों को जैसे-तैसे जिमाकर पितरों को ठगना बूनो की नानी ने कहाँ सीखा था ? नहीं सीखा था !

रामेसरी ने अपनी सास के निमित्त फतूरी बाबा को न्योता दिया था। वह चर्खा चलाकर दस-बारह रुपये महीना अपना कमा लेती थी। अन्न-वस्त्र के लिए अभी माँ-बाप जीवित थे। लड़की के साज-सिंगार के लिए और दूसरी जरूरतों के लिए सूत बेचकर हासिल की हुई यह रकम काफी थी। अपने पति और सास की बरसी के अवसर पर वह सात या पांच ब्राह्मणों को अवश्य जिमाती। ब्राह्मणों की संख्या भले थोड़ी रहे, सामग्री मगर अच्छी होनी चाहिए—इस ओर रामेसरी बराबर सतर्क रहती। हाँ, माँ-बाप और भाइयों को वह उनकी धारणाओं के मुताबिक ही चलने देती।

छोटी बहू के नानी नहीं थी, सो उसके नाम पर फतूरी का नौ-साला लड़का पित्तो जीमने आया।

चन्द घण्टों के अन्दर ही जिन्हें कई घरों के पितरों को अकेले-अकेले तृप्त करना था, वे उस रोज सबेरे ही नहा-धोकर और चन्दनटीका लगाके तैयार हो गये थे।

माहे रात से ही पेट को हल्का किये हुए था, उसे नौ पत्तलों से निबटना था न ! मुखिया के घर चूड़ा-दही से पितरपक्ख के ब्रह्मभोजी मैदान में वह जो कूदा सो बाबू नीलकण्ठ मल्लिक के यहाँ पूड़ी-तरकारी का पारायण करता हुआ बाहर निकला···बीच-बीच में कहीं भात-दाल-तरकारी, कहीं चूड़ा-दही और कहीं फिर भात-दाल-तरकारी और कहीं फिर चूड़ा-दही ! आधा पहर दिन उठे पहला पत्तल सामने आया था और आखिरी दो बजे। बाकी दिन-भर वह बूनो के दालान पर चित्त-पट होता रहा और पानी पीता रहा।

बूनो का खुद का भी यही हाल था। माहे की माँ के यहाँ से शुरू करके परमानन्द पाठक के घर उसने अन्तिम बार हाथ-मुंह धोये थे !

माहे की माँ को भी खिलाने-पिलाने का ग्रावेश[1] काफी था और पाठक लोगों का खान-पान तो गाँव-भर में मशहूर था ही।

दिगो के दालान पर उस रात पचीसी[2] खूब जमी थी। माहे और बूलो नहीं आ सके थे, बाकी सभी आये थे। दिगो और गौरी दोनों गोधिया[3] थे, दो बार हारे थे और एक बार इनकी गोटियाँ लाल हो गई थीं—जीत गये थे।

दुर्गानन्दन और दिगम्बर ने मधुबनी में जाने क्या-क्या बातें की थी कि आपस का तनाव बिल्कुल हट गया था अब। जन्माष्टमी की छुट्टी में दुर्गा घर आया और बूलो के घर जाकर बड़ी देर बाद बाहर निकला था। अपनी माँ और बहिन से भी उसने काफी एकान्ती[4] की थी।

दूल्हा जब से भगा दिया गया था तब से दिगम्बर-बूलो-माहे आदि के परिवारों से पण्डित-परिवार का मेल-जोल एकदम टूटा हुआ था, सो अब एकाएक जुड़ गया—मुखिया और फतूरी वगैरह इसे उच्चाटन और वशीकरण का कोई तान्त्रिक प्रयोग समझने लगे, या क्या सो वही जानें! हाँ, अचरज के मारे आँखें उनकी कपार पर जरूर उठ आई थीं। मुखिया ने दो दिन बाद, पोखर के पथराही घाट पर गीली धोती बदलते हुए फतूरी की ओर भोरे-भोरे आँखें फाड़-फाड़कर देखा। खुद दिसा-फराकत[5] हो आया था। हाथ मटिया चुका था, अब सिलवर का बनारसी लोटा मिट्टी से मल रहा था। घाट के नजदीक पानी के बलुई कछार पर एँड़ियों के सहारे बैठा था। बाईं ओर गर्दन घुमाके थूक फेंकी और बोला—खोंखा पण्डित का समूचा घर बूड़ गया फतूरी काका!

—कहते क्या हो!

१. जतन, भावुकता। २ चौपड़ की तरह का एक खेल—आठ कौड़ियों के सहारे खेला जाता है; खाने बिल्कुल चौपड़ के, गोटियाँ चार होती हैं। मुट्ठी में लेकर भाँजने पर चित और पट पड़नेवाली कौड़ियों के क्रम से लोग अपनी-अपनी गोटी की चाल बढ़ाते हैं। खेलनेवाले भी चार—आमने-सामने दो-दो, जो गोधियाँ (गोइयाँ साथी) कहलाते हैं। ३. गुइयाँ जोड़ी। ४ गुफ्तगू। ५. निबटने के लिए जंगल-मैदान या खुली जगह, गाँव के बाहर की बिना बस्ती की जमीन।

फतूरी चौंके। हथेलियों में फुर्ती आ गई तो कमर से सूखी धोती का कोर-किनारा चट्ट से गोलाई में लपट गया और सडाक से लाँग मानो आप ही पीछे की ओर होकर खुँस गई।

धोती का बाकी हिस्सा उन्होंने पीठ पर डाल लिया तो वह गर्दन का चदरऊ घेरा बन गया

झुककर गीली धोती पर हाथ डालते हुए फतूरी ने मुखिया को फिर टोकारा दिया—उँ?

घुटने-भर पानी मे जाकर मुखिया जोर-जोर से लोटा खँगार रहा था और फतूरी काका बीच में टूटे हुए श्लोक की कडी को फिर जोड़ रहे थे।

प्रथमस्तु महादेवो द्वितीयस्तु महेश्वरः!
तृतीयः शंकरः प्रोक्तश्चतुर्थो वृषभध्वजः!!
पंचमः कृत्तिवासाश्च…

मुखिया ने ताबड़तोड़ कुल्लियाँ की, वहीं पानी के अन्दर ही गर्दन को तनिक दाहिनी ओर घुमाकर—पानी लेकिन चुल्लू से सामने की तरफ से लेता था।

पानी से बाहर निकलकर वह गमछे से हाथ-मुँह पोंछने लगा। फतूरी तब तक पानी के अन्दर जाकर धोती खँगारने लग गये। पाठ का एक टुकड़ा खतम हो गया और धोती भी निचो ली उन्होंने!

—क्या कह रहे थे तुम मुखिया?

—खोंखा पण्डित का परिवाड़[1] बूड़ गया!

—कुछ कहवो करोगे कि!

—वह छउँड़ी[2] फिर गाँव-भर में कुदान मारने लगी फतूरी काका!

—कौन हो? बिसेसरी?

—तो और कौन!

—चार महीने हुए, मैंने तो उस लड़की को नहीं देखा है कहीं आते-जाते।

१. परिवार। २. छोकरी।

—आपको, फतूरी काका, घर की खबर तो रहती ही नही, फिर गाँव का हाल क्या जानने गये आप ?

इस पर फतूरी काका तनिक बिलमे।

ऊपर से ताजी-चिकनी मिट्टी ले आये कौड़ी-भर, लोटा को हल्के हाथ से मांजते हुए कहा—जाने भी दो बासकीनाथ, धी-बेटी ठहरी। नानी ने या मामी ने किसी काज से इधर-उधर दौड़ा दिया होगा। वहि-किरनी[1] किसके घर क्या काम करती है ? गया वह जमाना बाबू, मुट्ठी-भर जूठे भात की आस लगाये हमारी-तुम्हारी देहरी के सामने अब कौन निगोडी खडी रहती है ? और, फाजिल भात ही अब किसकी हँड़िया में पडा रहता है ? बोलो न ?

—सो मैं कहाँ कहता हूँ कि नहीं, मुदा···

बात को बीच ही मे निगलकर मुखिया कछार से ऊपर जा पहुंचा और मोहाड़[2] पर एँड़ियों के सहारे बैठ गया। साहड़ की हरी-ताजी छर-हरी टहनी तोड़ लाया था सो वहीं पड़ी थी। अण्टी से चाकू निकाली जो कि अपनी नफासत व तेज धार के लिए मौजा नौगछिया मे मशहूर थी—छोटी-सी चमचम करती हुई रेजिस चाकू! पहले उसको फली खोलकर धार को धोती के खूंट से पोंछा, फिर दतवन बनाने लगा। अपनी इस चीज पर हाथ पड़ते ही मुखिया को कलकत्ता की याद हो आती थी। दो साल पहले माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ की यात्रा कर आया था, लौटते समय दो रोज कलकतिया हवा खाई थी। यह चाकू वहीं डेढ रुपया मे ली थी···

एक हाथ में भीगी-निचुडी धोती, दूसरे मे पानी-भरा लोटा सँभाले फतूरी भी घाट छोड़कर ऊपर आये। तनिक ठमक गये।

—और, क्या-क्या बात थी ?

दातून चबाता हुआ मुखिया बोला—रामेसरी साहे की माँ से पहर-पहर गप्पें लडाने लग गई है। मानिकपुरा-मढियावाला बुड्ढा जब से मुँह की खाकर गया तब से इन लोगों में बोल-चाल, मेल-जोल सब बन्द था।

१. गृहदासी। २ भिड़, तालाब या चभच्चा का बांध।

अब एकाएक रातो-रात यह क्या हो गया फतूरी काका, कि गंगा-जमुना की धार एक ही नहर में आकर बहने लगी है फिर ?

—क्या बुरा है ! तुम्हें इसमें प्रपंच[1] की गन्ध तो नहीं लग रही है ?

हतप्रभ होकर मुखिया ने आँखें नीचे की ओर कर लीं तो फतूरी ने घर का रास्ता पकड़ा।

तो, उतनी बड़ी दुर्घटना के तीन ही महीने बाद बिसेसरी फिर टोला-मुहल्ला में कुदान भरने लगी थी ?

अरे, कुदान भला क्या खाकर भरती बेचारी ! दरभंगा की महारानी की कोख से तो नहीं पैदा हुई थी वह; या कि हुई थी ?

नहीं, बीसो[2] बेचारी एक गरीब घर की पितृहीन लड़की थी जिसे निठुर गोतियों ने अपनी विरासत से महरूम करके दूर—बहुत दूर खदेड़ दिया था, बदनसीब नाना-नानी की दरिद्रता के दहकते हुए अग्निकुण्ड में धकेल दिया था।

इस उमर में बेफिक्र होकर कुदान वह भरे जो हँसी-खुशी से दमकते चेहरोंवाले खानदान में पैदा हुआ···उसी में पला-पुसा हो या फिर जिस छोकरी का बाप मिनिस्टर हो कहीं का या फिर लखपती-करोड़पती हो···

बिसेसरी या उसकी बेवा माँ रामेसरी के लिए कुदान भरने की कल्पना तब तक एक असम्भावित स्वप्न था।

हाँ, बिसेसरी दो-तीन जगह अब जरूर जाने लगी थी। तरुणाई की सहज चुस्त चाल अगर किसी खूसट की निगाहों में खटके तो इसमें भला अबोध बिसेसरी का क्या कसूर ?

खंजन के घर जाती थी, बूलो की भाभी का आँगन फिर उसकी मुस्कानों से धुलने लगा था और कभी-कभी तिरपित साहु की दुकान भी जाना पड़ता था। बस एतद्धि रामायणम् ![3]

१ साजिश, षड्यन्त्र। २. बिसेसरी, विश्वेश्वरी। ३. इतनी-भर रामायण ! बाकी कुछ नहीं !

—आपको, फतूरी काका, घर की खबर तो रहती ही नहीं, फिर गाँव का हाल क्या जानने गये आप ?

इस पर फतूरी काका तनिक बिलमे।

ऊपर से ताजी-चिकनी मिट्टी ने आये कौड़ी-भर, लोटा को हल्के हाथ से माँजते हुए कहा—जाने भी दो बाबाकीनाथ, धी-बेटी ठहरी। नानी ने या मामी ने किसी काज से इधर-उधर दौड़ा दिया होगा। बहि-किरनी[1] किसके घर क्या काम करती है ? गया वह जमाना बाबू, मुट्ठी-भर जूठे भात की आस लगाये हमारी-तुम्हारी देहरी के सामने अब कौन निगोड़ी खड़ी रहती है ? और, फाजिल भात ही अब किसकी हँड़िया में पड़ा रहता है ? बोलो न ?

—सो मैं कहाँ कहता हूँ कि नहीं, मुदा···

बात को बीच ही में निगलकर मुखिया कछार से ऊपर जा पहुँचा और मोहाड़[2] पर एँड़ियों के सहारे बैठ गया। साहुड़ की हरी-ताजी छर-हरी टहनी तोड़ लाया था सो वहीं पड़ी थी। अण्टी से चाकू निकाली जो कि अपनी नफासत व तेज धार के लिए मौजा नौगछिया में मशहूर थी—छोटी-सी चमचम करती हुई रेजिम चाकू ! पहले उसको फली खोलकर धार को धोती के खूँट से पोंछा, फिर दतवन बनाने लगा। अपनी इस चीज पर हाथ पड़ते ही मुखिया को कलकत्ता की याद हो आती थी। दो साल पहले माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगन्नाथ की यात्रा कर आया था, लौटते समय दो रोज कलकतिया हवा खाई थी। यह चाकू वहीं डेढ़ रुपया में ली थी···

एक हाथ में भीगी-निचुड़ी धोती, दूसरे में पानी-भरा लोटा सँभाले फतूरी भी घाट छोड़कर ऊपर आये। तनिक ठमक गये।

—और, क्या-क्या बात थी ?

दातून चबाता हुआ मुखिया बोला—रामेसरी साहे की माँ से पहर-पहर गप्पें लड़ाने लग गई है। मानिकपुरा-मढ़ियावाला बुड्ढा जब से मुँह की खाकर गया तब से इन लोगों में बोल-चाल, मेल-जोल सब बन्द था।

१. गृहदासी। २. भिड, तालाब या चभच्चा का बंध।

अब एकाएक रातों-रात यह क्या हो गया फतूरी काका, कि गंगा-जमुना की धार एक ही नहर में आकर बहने लगी है फिर ?

—क्या बुरा है ! तुम्हें इसमें प्रपंच[1] की गन्ध तो नहीं लग रही है ?

हतप्रभ होकर मुखिया ने आँखें नीचे की ओर कर ली तो फतूरी ने घर का रास्ता पकड़ा।

सो, उतनी बड़ी दुर्घटना के तीन ही महीने बाद बिसेसरी फिर टोला-मुहल्ला में कुदान भरने लगी थी ?

अरे, कुदान भला क्या खाकर भरती बेचारी ! दरभंगा की महारानी की कोख से तो नहीं पैदा हुई थी वह; या कि हुई थी ?

नहीं, बीसो[2] बेचारी एक गरीब घर की पितृहीन लड़की थी जिसे निठुर गोतियों ने अपनी विरासत से महरूम करके दूर—बहुत दूर खदेड़ दिया था, बदनसीब नाना-नानी की दरिद्रता के दहकते हुए अग्निकुण्ड में धकेल दिया था।

इस उमर में बेफिक्र होकर कुदान वह भरे जो हँसी-खुशी से दमकते चेहरोंवाले खानदान में पैदा हुआ···उसी में पला-पुसा हो या फिर जिस छोकरी का बाप मिनिस्टर हो कहीं का या फिर लखपती-करोड़पती हो···

बिसेसरी या उसकी बेवा माँ रामेसरी के लिए कुदान भरने की कल्पना तब तक एक असम्भावित स्वप्न था।

हाँ, बिसेसरी दो-तीन जगह अब जरूर जाने लगी थी। तरुणाई की सहज चुस्त चाल अगर किसी खूसट की निगाहों में खटके तो इसमें भला अबोध बिसेसरी का क्या कसूर ?

खंजन के घर जाती थी, बूलो की भाभी का आँगन फिर उसकी मुस्कानों से धुलने लगा था और कभी-कभी तिरपित साहु की दूकान भी जाना पड़ता था। बस एतद्धि रामायणम् ![3]

१. साजिश, षड्यन्त्र। २. बिसेसरी, विश्वेश्वरी। ३. इतनी-भर रामायण ! बाकी कुछ नहीं !

खंजन उसकी मुँहलगी और हमदर्द सहेली थी। आयु में चार महीने छोटी। क्वाँरापन उसका भी अब तक टटका[1] था। वह परमानन्द पाठक की भतीजी थी। पिछले जेठ में ठीक दूल्हा आने के दिन, दुपहर के वक्त उसे बुखार आ गया था। सो, अब बीसो उसके घर आने-जाने लगी थी।

बूलो की भाभी के घर चउड-चन[2] के दिन ढाई-तीन महीने बाद वह आई थी। कितनी खुश हुई थी भाभी! पकवान छानना छोड़कर उठ आई और कसके बीसो के गाल चूम लिये थे, एक नहीं अनेक बार! और उधर कड़ाही में पक रही गुझियाँ लहक उठी थीं; धुआँ उठने लगा था उनसे!!

पन्द्रह

दिगम्बर का ननिहाल—पदुमपूरा—खजउली स्टेशन से कोस-भर पच्छिम था, पक्का कोस नहीं कच्चा कोस···डेढ़ माइल का फासला था।

ऐसे तो छठे-छमाहे दिगो को पदुमपूरा जाना ही पड़ता था, क्योंकि नानी संग्रहणी का शिकार थी बहुत दिनों से। उनके लड़के थे तीन मगर लड़की यही एक थी—दिगम्बर की माँ मात्र, सो भी पहली सन्तान। नाना अथबल[3] हो चुके थे, आधा लेटे-लेटे दिल-दिमाग की खुरचन कागज पर उतारा करते थे। इधर पण्डिताऊ ढंग पर नाटक लिखने की धुन सवार थी 'ललितकिशोर'जी पर, पौराणिक कथानकों का आधार लेकर अब तक आप अठारह रूपक तैयार कर चुके थे। नाना और इस नाती में खूब घुटती थी। घण्टों बैठकर दिगम्बर सूत्रधार—नट-नटी-विदूषक के कथोपकथन सुना करता नाना के मुँह से। फुलिस्केप साइज का बादामी कागज. सौ-सौ पेज की दसियों कापियाँ! ब्लू ब्लैक स्याही और पीतल की मोटी निब की सुडौल और पुष्ट लिखावट में बड़ा ही भव्य—अत्यन्त मनोरम लगता था दिगम्बर को यह सब देखने में। नाना की यह साधना किशोर

१. ताजा, तात्कालिक। २. भाद्र शुक्ल की चौथ, नैवेद्य-निवेदनपूर्वक भादो की चौथ के उगते चाँद को देखने का त्योहार। ३. बिल्कुल असमर्थ, नाताकत, अस्तबल।

गाती के रोम-रोम में स्फूर्ति का संचार करती थी। सुनाते-सुनाते ललित-किशोरजी लेखक की मर्यादा का उल्लंघन करके कब नाटकीय परिधि में अपने स्वरों और मुद्राओं को दाखिल कर लेते, पता नहीं। यदा-कदा वल्कि बहुधा योग्य आगन्तुकों को वह अपनी ये कृतियाँ बाँच-बाँचकर आग्रहपूर्वक सुनाया करते। इससे हुआ यह था कि अधिकांश कथोपकथन उन्हें कण्ठस्थ हो गये। यह सब बुढ़ऊ के लिए भी मामूली मनोरंजन ही था।

दिगम्बर के तीन मामा थे। एक जिला सहरसा में किसी हाईस्कूल का हेडमास्टर था, एक मुक्तापुर की जूट-फैक्टरी में असिस्टेंट एकाउंटेंट और तीसरा मैट्रिक पास कर चुकने पर जो खेती-गिरस्ती में जुता सो अब घर का मुखिया बन बैठा था।

नानी थी, नाना थे, तीन मामियाँ और उनके सात बच्चे थे, एक नौकरानी थी, एक चरवाहा था—सबसे ऊपर परिवार-भर की देख-रेख करनेवाले बाबू जयनन्दनलाल दास तो थे ही। यही दिगो के 'छोटका मामा' थे।

परिवार के महामुखिया बाबू श्री गुणवन्तलाल दास 'ललितकिशोर' अब घर के किसी काम में दखल नहीं देते थे। स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, कृत्तिवास का बंगला रामायण, काशीराम दास का बंगला महाभारत, मासिक कल्याण, सूरसागर, विनय पत्रिका, ब्रज-माधुरीसार···और अपनी साहित्य-साधना···वह निष्काम कर्म के कायल थे। अपनी कृतियों के पुलिन्दों की गट्ठर को देख-देखकर आप ही पुलकित होते और बुदबुदा उठते :

कृष्णाय वासुदेवाय
हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेश नाशाय
गोविन्दाय नमोनमः॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय
गोब्राह्मण हिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय
गोविन्दाय नमोनमः॥

अन्तिम कडी पर पहुँचते-पहुँचते भावावेग के मारे उनका मस्तिष्क एक अजीब तनाव का अनुभव करता और सांस घुटने-सी लग जाती; मानसिक आकुलता से घिग्घी बँध जाती तो स्वर के क्रम अर्धरोदन एवं उच्छ्वास से संघटित होने लगते—प्रभो ! प्रभो ! त्राहि माम् मधुसूदन ! मो सम कौन कुटिल खल कामी !···और फिर—मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई···कम्पित स्वरलहरी आत्मनिवेदन की सहज-स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड लेती। विभोर हो-होकर और तालियाँ पीट-पीटकर गाये जानेवाले मीरा के वे अनमोल पद बहुधा दिगम्बर को अपनी लय मे बहा ले जाते थे। भक्ति और भावना की विह्वलता के आगे बूढे गले का वह फटा-फूटा खुरदरापन बिल्कुल ही दब जाता था। आवेग की भाफ निकल जाने पर 'ललितकिशोर'जी के मुँह से निकलता :

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्मूः
मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥[1]

भक्ति की इस सगुण धारा ने उन्हें धीरज की नैया दी थी, सन्तोष की पतवार दी थी। लिखित वस्तुओं का प्रकाशन उनकी दृष्टि मे उतना महत्त्व नही रखता था जितना कि लिखना—लिखते चले जाना और पाण्डुलिपियों का ढेर लगा देना। आगे का काम तो लीलाधर-नटनागर गोवर्धन-गिरिधारी-वृन्दावनबिहारी-कुब्जाविलासी-गोलोकवासी-कालिय-नागनथैया-कुँवर कन्हैया के कृपा-कटाक्षो पर निर्भर था न !

दिगम्बर जब ननिहाल रहता तो दिन-भर में एक-आध बार आकर नाना के नजदीक बैठ जाता और वह अपनी कृतियाँ नाती को प्रेमपूर्वक सुनाते।

नये ढग से लिखी गई कविता या कहानी को वह समय एवं प्रतिभा

१. काम करना भर तुम्हारा हक है, परिणामो पर तुम्हें कदापि अधिकार नही। काम के नतीजो को निमित्त मत बनाओ, निठल्लेपन से कभी तुम्हारा वास्ता न पड़े ॥—गीता

का दुरुपयोग बताते। इसी से दिगम्बर नाना के सामने कभी नहीं खुला। लिखता तो ग्राखिर वह भी था न ?

नानी को सींकों से पंखी-विजनी, पान-सुपारी रखने का डिब्बा, घुमरी, पउती, बिड्हाड़ा, रिकाबी, डलिया, चँगेरी, फुलडाली बनाने का भारी शौक था। अब तो खैर देर तक एक आसन से बैठना उनके लिए असम्भव था।

दिगम्बर का मन नानी के कला-कौशल पर उतना फिदा नहीं था जितना कि छोटी मामी की सीने-पिरोने की हुनरमन्दी पर। ठिगने कद की यह साँवली औरत स्वेटर-मोजे तो बुनती ही थी मगर बातें भी बड़ी नफासत से बुनती थी—सच पूछिए तो इसी एक कारण से दिगम्बर बाइससाला छोटी मामी के चंचल नैनों को अपना दिल रेहन किये हुए था। नाम हू-ब-हू उसकी प्रकृति और आकृति पर फिट बैठता था ·· सलोनी देवी ! चाल-ढाल और रंग-ढंग परखकर सबकुछ भाँप लेनेवाला जाने वह कौन था जिसने छोटकी मामी का ऐसा बढ़िया नामकरण किया ? सलोनी ! और अब सलोनी देवी !!

बाकी दो मामियाँ वैसी ही थीं, मामूली घरों में जैसी और जनीजात होती हैं—नितान्त साधारण किस्म की; नाक-नक्शा, चेहरा-मोहरा, शील-स्वभाव किसी भी दृष्टि से अतिशय सामान्य।

यह तो था दिगो का मातृकुल ननियाउर कह लीजिए या ननिहाल···माँ का खानदान।

पदुमपुरा के पास ही एक गाँव था मढ़िया। अपने मिडिल स्कूल के लिए आस-पास के इलाकों मे यह बस्ती बहुत दिनो से नामी था।

मिडिल के दो साल दिगम्बर यहीं का विद्यार्थी रहा। यो तो कई साथी थे उन दिनों के, मगर बाचो से घनिष्ठता जो हुई सो हद को पार कर गई थी। अलग रहने पर भी वर्षों तक दोनों में पत्र-व्यवहार चालू था।

वाचस्पति और दिगम्बर—दोनों ने '४२ मे सातवाँ दर्जा यानी अंग्रेजी-मिडिल पास की थी। बाचो को स्कॉलरशिप मिला था, पन्द्रह रुपये मासिक; मैट्रिक तक लगातार (चार साल) वह मिलता रहा, ग्यारहवें

दर्जे तक। '४६ में वाचस्पति ने मैट्रिक की, डिवीजन यद्यपि फर्स्ट नहीं रोकण्ड आया था। दिगम्बर तो खैर '४४ में ही फेल होकर पढ़ना छोड़ बैठा था। मित्रता फिर भी दोनों तरफ उसी तरह अटूट बनी रही। हाँ, वाचस्पति के पास कई कारणों से उतना वक्त नहीं बचता था जितना कि दिगम्बर के पास। अपने दोस्त के लम्बे-लम्बे खत का जवाब देना वाचस्पति के लिए हमेशा बड़ी विकट समस्या रही। छठे-छमाहे आठ-दस लाइन घसीटकर अपने को वह जैसे-तैसे तसल्ली दे लेता।

वाचस्पति भी वाट्सन हाई-स्कूल, मधुबनी का प्रतिभाशाली और गम्भीर छात्र था। मैट्रिक के बाद पढ़ाई उसकी जो छूटी सो छूट ही गई। अब वह छ लाख की आबादीवाले तीन-तीन थाना की जनता की तरफ से इन छ-सात वर्षों के अन्दर नौ दफे जेल जाकर थाली-कटोरा बजा आया था।

वह सोशिलिस्ट था।

'४३-'४४ में एक अण्डरग्राउण्ड सोशलिस्ट लीडर का सम्पर्क पाकर रातो-रात वाचस्पति के जीवन ने त्याग और तपस्या की यह कँटीली पगडण्डी पकड़ ली थी। दो महीना जाते न जाते वह मधुबनी के विद्यार्थियों का अगुआ बनकर राजनीति की सतह पर जोरों से उभर आया था।

और, रात-दिन पॉलिटिक्स की धमाचौकड़ी यह तभी से चली आ रही थी।

पढ़ाई में पग-पग पर अड़चन पड़ने लगी। हेडमास्टर पहले 'बेटा' और 'लाल' जैसे पगे-मीठे सम्बोधनों से पुकारा करता, अब वही नजर मिलते ही *अपने गालों को आगरे के गोल-गप्पे बनाकर* मुँह फेर लेता। समझाते-समझाते न जाने कै कटोरा कीमती पसीना अपना वह चुआ चुका था।

साथियों ने भी कम कोशिश नहीं की थी—मगर वह नहीं सँभला और बकौल अपने हिन्दी टीचर पं० श्री व्रजवल्लभ त्रिपाठी 'विधुवलय' के, एक उदीयमान नक्षत्र घनघोर घटाओं की अटपटी अटारियों पर उठा और चिरकाल के लिए चौपट हो गया!

बाप का देहान्त तभी हो चुका था जब वाचो नौ वर्ष का रहा होगा।

माँ, छोटी बहन और खुद तीन ही जने थे। पाँच बीघा बढ़िया जमीन विरासत मे मिली थी। माँ लहेरियासराय से पच्छिम के एक ऐसे गाँव की लड़की थी जो अपनी सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के लिए बिहार भर मे मशहूर था।

पिता पं० श्रीपति झा काव्यतीर्थ पहले सिहवाडा और पीछे पुपडी (जनकपुर रोड) हाईस्कूल मे हेडपण्डित रहे। प्राचीन परम्पराओ के प्रति आस्थावान् होते हुए भी, नये युग की ओर उनका दृष्टिकोण असहिष्णुता का शिकार कदाचित् ही हुआ हो।

माँ अपर प्राइमरी पास थी। '३८ में मढ़िया के राजपूत काश्तकारो ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन को बस्ती के अन्दर कन्या पाठशाला खोलने पर राजी कर तो लिया, पर उन्हें महीनों तक मास्टरनी ही नही मिली। मंजूरी लोअर प्राइमरी स्कूल की हुई थी। मिडिल न सही, अपर प्राइमरी जिसने पास की हो ऐसी तो होनी ही चाहिए मास्टरनी। आखिर 'ललितकिशोरजी' के कानों तक बात पहुँची तो उन्होंने वाचस्पति की माँ से कहवाया था और वह दो दिन तक सोचती-विचारती रही, तीसरे रोज अपनी स्वीकृति जतला भेजी थी।

समाज की नकेल जिन चन्द हाथों मे थी, उन्हे वाचों की अम्मा का पड़ोस की बस्ती मे जाकर यह पढ़ौनी करना बडा ही अखरा था। सारा कसूर 'ललितकिशोर' की बुढौती पर ओढ़कर नाराजी के अपने-अपने दहकते अंगारों को जैसे-तैसे उन्होने बुझ जाने दिया था, जीभ की जड़ें उलट ली थी।

गुरुआनी को मढ़ियावालों ने रहने की भी जगह दे रखी थी। दो कोठरियाँ, छोटा-सा आँगन, तुलसी का चउरा, तनिक-सी बाडी, अमरूद के दो और नीबू का एक झाड़...और चाहिए ही क्या!

माँ लेकिन मढ़िया के अपने उस क्वाटर में लगातार महीना-भर भी शायद कभी रह पाई हो। अब तो खैर बिलकुल अकेली थी, लडकी का ब्याह और गौना हो चुका था। वह ससुराल बस रही थी।

बेटे को लीडरी से फुर्सत मिलती तब न!

इस बार साल-भर बाद दिगम्बर की वाचस्पति से भेंट-मुलाकात

हुई थी और इसी आशा से दिगम्बर पदुमपुरा आया हुआ था। पांच रोज दोनों साथ रहे।

मास्टरनी लडके को मना-मनाकर हार बैठी थी, वह शादी के लिए तैयार ही नहीं होता था। एक दिन दिगो के सामने एकान्त में पहले, अपने दोनो हाथ जोड़कर पीछे उसकी ठुड्डी छूकर वह बोली—बबुआ, अब तरा ही भरोसा है। अपने मीत को समझा-बुझाकर तू नही तो और कौन राजी करेगा ? तीन बरस से माथा पटकने-पटकते मर गई कि बेटा, मुनिया ससुराल चली गई, मैं अकेली इस घर में कैसे रहूँगी ? बहू ला दे लल्लन !...मगर, एक भी मेरी कहाँ सुनता है मुड़हा[1] ? नहीं सुनता है दिगो !

विह्वलता से उसका गला रुँध-रुँध आया। दिगम्बर के कन्धे पर दाहिना हाथ रखकर रुक-रुकके वह फिर कहने लगी—बेटा, उसे क्या फिकर है ! कौन-सा पहाड़ उठाने कहती हूँ मैं ? बहू आ जायेगी तो दो मुट्ठी भात और कलछी-भर दाल का कहीं टोटा पड़ेगा भला घर में ? राम ! राम ! राम ! ! छोकरे की अकल पाटीवालों ने चाट ली है, कुछ भी नहीं समझता है मेरा बेटा ! पढाई-लिखाई छोडकर रने-बने[2] भटकता फिरता है, क्या तो किसान-मजूर का राज कैम[3] करेंगे, सबको जमीन मिलेगी, सबको काम मिलेगा ! कप्पार मिलेगा ! ! टिटियाके मर जाओगे, कुछ नहीं होगा ! देख तो रही हूँ पाँच बरस से, कौन-सा लड्डू-पेडा, मोहन-भोग-मालपुआ हाथ लगा है ?...

दिगम्बर बकर-बकर ताकता रहा और कान पाथकर सुनता रहा अपने मित्र की माँ का उलाहना—आधी आयु की उस महिला पर दिगो को दया आ गई। वह बोला—मुझे तो तुमने कहा नहीं था यह सब कभी ? अब मैं वाचो को जरूर समझाऊँगा।

इस बातचीत के अगले ही दिन वाचस्पति आ गया।

बड़ी बातें हुई दोनो में। बिमेसरीवाली दुर्घटना और उसके प्रतिरोध का समाचार सुनकर वाचस्पति ने दिगम्बर की पीठ बार-बार ठोकी,

१. मूढ़, बेवकूफ। २. बंजर-वीरान और जगल-मैदान में। ३. कायम।

फिर उछलती-सी आवाज मे कहा—चावश[1] !

—नही बाचो, इतने-भर से काम नही चलेगा।

—तो ?

वाचस्पति ने देखा, दिगम्बर एकाएक गम्भीर हो गया है। पीठ ठुकवाते समय खुशी की जिस उबाल को वह मुँह के अन्दर दबाये हुए था, सो अब बिल्कुल गायब थी। आँखो के फैले हुए कोए सिमट आये थे, साँस की गति मद्धिमतर हो गई थी, नाक के पूड़े स्पन्दन खो बैठे थे।

—क्या करना होगा ?

......................।

—अरे, कुछ कहोगे भी तो !

—आगे का काम···

अब दिगम्बर ने मुँह खोला। निगाहे उसकी वाचस्पति की आँखो पर गडी हुई थी। वाचस्पति के मन-प्राण की समूची शक्ति मानो आँख-कान के भीतर बटुर आई थी।

···तुम्हारी मदद के बिना आगे का काम नही होगा बाचो !

वाचस्पति ने दिगम्बर का कन्धा थपथपाया—कहो न ?

तुम्हे बिसेसरी का दूल्हा बनना होगा !—कमाण्ड की जमी टोन में दिगम्बर ने कहा।

वाचस्पति की पलकों मे तनाव आ गया, दाँतों ने मसूडो का दबाव महसूस किया।

अपने को सँभालकर वह बोला—दूल्हा ठीक कर दूँ यही चाहते हो न ?

—तुम्हें आखिर क्या एतराज है ?

—मेरी तो शादी करने की इच्छा नही है।

—इच्छा की भी तुमने खूब कही ! बता दो, उतार लाऊँगा··· कहाँ टाँग रखी है अपनी यह पोटली तुमने ?

इस पर वाचस्पति को थोड़ी हँसी आ गई तो दिगम्बर भी तनिक

१. शाबाश !

मुस्कुराया। फिर कहा—सारी बात खुलकर मैं तुम्हें बता चुका हूँ। जिन्दगी-भर तो अनब्याहा तुम रहोगे नहीं, शादी एक-न-एक रोज करबे करोगे। बिसेसरी बड़ी समझदार और बहादुर लड़की है। बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोड़ेगी वह। साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी से अच्छी साथिन बनेगी···हम गाँव-गँवई के लोग ठहरे, समाजसुधार की भी हमारी रफ्तार मद्धिम ही होगी। ऐसा नहीं कि किसी मद्रासी या पंजाबी सोशलिस्ट जवान को लाकर तुम हमारे सामने खड़े कर दो और कहो, यह रहा बिसेसरी का दूल्हा! ऊँ हूँ, अभी यह कहाँ चलेगा? नहीं चलेगा। तुम्हें दो रोज का मैं बखत देता हूँ, सोच लो बाबू अच्छी तरह!

वाचस्पति उठकर चहलकदमी करने लगा, दिगम्बर बैठा ही रह गया। धोती के घुटनोंवाले छोरों पर चोरकाँटी लग गई थी, एक-एक करके वह उन्हें छुड़ाने लगा।

टहलते-टहलते वाचो बोला—अगर गोत्रों और वंशों के रिश्ते आपस में टकराते हों तो?

दोस्त की ओर नजर फेंककर दिगम्बर ने कहा—तुम भर मुँह एक बार 'हाँ' तो कह दो, फिर सब ठीक हो जायेगा।

—माँ से पूछ लूँ, इसकी भी इजाजत नहीं दोगे?

—पाँच साल से यह जो सोशलिज्म का पापड़ बेलते आये हो सो सब माँ से पूछ लिया था न?

वाचस्पति के होंठों पर हँसी तैर आई, मन-ही-मन उसे एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव होने लगा। ब्याह के नाम पर अब तक उसने एक मक्खी तक को अपनी पीठ पर बैठने नहीं दिया था। पिछले पाँच-छः वर्षों में जाने कितने लड़कीवालों ने उसके लिए चक्कर काटे थे और लौट-लौटकर वापस गये थे! माँ उसे मनाते-मनाते हार गई थी।

लेकिन बिसेसरी की शादी का सवाल कोई मामूली सवाल नहीं था। बित्ता-आधा बित्ता-भर की छाती नहीं, गज-भर का सीना चाहिए था उसे हल करने के लिए!

तरुण वाचस्पति के प्रफुल्ल होंठों ने दिगम्बर को पुलकित कर दिया।

फौरन उठकर उसने अपने साथी को छाती से लगा लिया।

सोलह

दुर्गानन्दन एक दस्तावेज पढ़ने में मशगूल था।

दो-तीन मुवक्किल उसे घेरकर बैठे हुए थे।

आसिन का महीना। दुपहर का वक्त। कड़ाके की धूप…दिगम्बर स्टेशन से सीधे कचहरी आ गया था।

कुछ देर बाद अलग खड़ा रहा वह आशा में कि पहले नजर दुर्गानन्दन की ही उस पर पड़े। मगर सो जब नहीं हुआ तो हारकर वह बरामदे पर पहुँचा।

—पर्नाम दुर्गा भइया!

—दिगो?

पहले मुँह खुला, आँख पीछे उठी दुर्गा की। बड़ी हलतलबी[1] थी। होल्डर उठाकर पास ही बैठ जाने का इशारा किया और निगाह फिर घसीटकर लिखी मुंशियाना सतरों पर रुक-रुकके रेंगने लगी।

—क्या हाल है गाँव-घर का?

उसी मुद्रा में दुर्गानन्दन ने पूछ लिया।

दिगम्बर उस छोटी-सी चौकी पर किसी प्रकार बैठने की जगह बना चुका था, बोला—सब ठीक-ठाक है दुर्गा भैया! लेकिन इस वक्त मैं नौगछिया से कहाँ आ रहा हूँ?

जिज्ञासा में दुर्गा की भौंहें चौड़ी होकर ऊपर खिंच गईं…निगाह पर अब भी दस्तावेज का ही कब्जा था।

दिगम्बर कभी दस्तावेज की ओर, कभी मुवक्किलों की ओर, बहुत करके गउँआ[2] की ओर देख रहा था।

कैसी अच्छी खबर वह लाया था!

कितना बड़ा काम वह कर आया था!

१. हाल-तलबी, काम पूरा कर देने की मस्त-व्यस्तता। २. अपने गाँव का रहनेवाला।

उसने धीरे से कहा—मातृक[1] से आ रहा हूँ…

—नानी का कुशल-समाचार कहो ?

—वखत किसी तरह खेप रही है ।

—मुझे घण्टा-भर लगेगा इस काम में, तुम तब तक टहलो-बूलो। उधर भालू नाच रहा है, एक जादूगर भी आया है…सो सब देखो जाकर। पानी चाहो तो उधर ट्यूब वेल है, पी आओ। चाह पीछे पियेंगे दोनों जने साथ चलके…

दिगम्बर को हँसी आ गई, बोला—इतमीनान से आप अपना काम कीजिए दुर्गा भइया ! यहाँ कोई हड़बड़ी नहीं है…बल्कि अपनी कोठरी के ताले की कुंजी दे दीजिए, जाकर वहीं आराम करूँगा।

दुर्गानन्दन ने कुर्ते की जेब से निकालकर चाबी दिगम्बर को थमा दी—जाओ।

दिगो डेरे पर आया। कम्बल बिछाकर कोठरी के अन्दर ही लेट गया।

जैनगर की ओर से आनेवाली ट्रेन में दर-असल आज भारी भीड़ थी। दिगम्बर को बैठने की जगह कहाँ मिली थी ? वह तो घुटनों पर खड़ा होकर मधुबनी तक आया था—खजउली से राजनगर, राजनगर से मधुबनी…तीन स्टेशनों के बीच दो फासले मानो टँग करके पार किये थे। बारी-बारी से दाहिनी और बाईं बाँह उठा-उठाकर ऊपर की उन चौड़ी छड़ों को थामता आया था, जो दूरगामी पैसेंजरों के सामान की अधिकता से लचक रही थीं—डब्बे के नीचे की हिलती धुरियों से तुक मिला रही थीं। बातचीत, शोर-गुल, छींक-खाँस, धक्कम-धुक्की, भीड़भाड़…दिगो की तबियत भारी-भारी-सी हो रही थी, घड़ी-दो-घड़ी वह घोर निर्जनता में बिताना चाहता था।

तन्हाई के लिए उसकी रूह मानो तड़प रही थी। सो, अपेक्षित एकान्त स्थान अब आकर दिगम्बर को मिल गया तो बड़ी खुशी हुई।

मिनटों में उसकी पलकें थकान से तनी नसों के झुलावे का शिकार

१. ननिहाल।

बन गई—तकिये पर माथा, गाल तले हथेली।

बाबू दिगम्बर मल्लिक सो गये।

सपने में उन्होंने बिसेसरी के ब्याह का आयोजन देखा···

वाचस्पति को कई आदमी भड़का रहे थे, यह भी देखा···

फिर आधी नींद पूरी नींद मे बदल गई।

साढे चार बजे दुर्गानन्दन लौटे, तब भी दिगम्बर सो ही रहा था।

—उठ दिगो, कितना सोता है!

—वेंऽऽऽऽउँ...···

दिगम्बर ने करवट बदल ली और माथे को तकिये में गोज लिया!

जूते खोलकर दुर्गानन्दन ने एक ओर रख दिये, कुर्ता निकालकर दीवार में ठुंकी कील से लटका दिया। फिर कम्बल पर आकर दिगम्बर से बिल्कुल सटकर बैठा और आधी घड़ का बोझा उसकी पीठ पर डालकर स्वयं दिगो के चेहरे पर झुक गया।

—उठता है कि नही?

—उठ तो गया हूँ!

—ऊँ हूँ, अभी कहाँ उठा है?

—यह लो!

दिगम्बर के फिर करवट बदल ली तो दुर्गानन्दन हँस पड़ा। बोला—वाह रे मल्लिक! अहदीपन की यही पूँजी लेकर तुम मुखिया से मोर्चा लोगे? हि हि हि हि···

अब वह दिगो के एक गाल पर निहायत हलकी-फुलकी चपतें लगाने लगा!

दिगम्बर में हाथ में हरकत आई, अपने गाल पर से दुर्गा की हथेली हटाकर वह छाती के पास ले आया। आँख मूँदे ही पंजा लड़ाने लगा।

—अच्छा! मस्ती चढ़ी है बाउ रे?

अपनी उंगलियाँ कड़ी करके दुर्गानन्दन ने पंजे को पहले खीचा, पीछे कसकर मरोड़ा।

दिगम्बर 'ईस-ईस' करके उठा और बैठ गया।

दुर्गानन्दन था भी दिगो से डवल न !

—आंख-मुंह पोंछो, चलो चाह पी आएँ।

—चलिए, लेकिन चाय नही।

—तो फिर कलाकन्द खायेगा ?

दुर्गानन्दन ने परिहास किया तो दिगम्बर बुजुर्गी टोन में बोला—काम तो मैं आपका ऐसा कर आया हूँ कि बंगाली केबिन का रसगुल्ला खिलाइए चलके…

बिसेसरी के मझले मामा की आँखें चमक उठीं। खुशी के मारे रबड़ के बचकानी गेंद की तरह उछलकर मुंह के जंगले से निकला—सच ?

दुर्गानन्दन की खोपड़ी के भीतर मानो कुल्फी-मलाई का लड्डू नाचने लगा। दिगम्बर को भर पाँज[1] पकड़ लिया उसने। प्रसन्नता की मात्रा इतनी अधिक थी कि बोल नही फूट पा रहा था। आज दिगो दुर्गा को मामूली कायस्थ युवक दिगम्बर मल्लिक नहीं, संकट-मोचन बजरंगबली हनुमानजी का अवतार प्रतीत हो रहा था—शारीरिक बल मे न सही, सूझ-बूझ की दृष्टि से तो वह अवश्य ही दुर्गानन्दन के लिए संकटहरण अंजनीनन्दन साबित हुआ था।

दिगम्बर बाहर जाकर पेशाब कर आया। लोटा मे पानी था ही, आँख-मुंह पोंछकर बैठा।

धीरे-धीरे उसने दुर्गानन्दन को सारी बातें बतला दीं।

—दिगो, अब चाह पी आएँ चलके !

—नहीं, कहीं चलके पहले यह तो मालूम करें कि वाचस्पति और बिसेसरी की आनुवंशिक परम्पराएँ इस ब्याह के प्रतिकूल तो नही पड़ेंगी। अब इसी बात पर हमारी सारी उछल-कूद निर्भर है दुर्गा भइया !

दुर्गानन्दन का चेहरा भारी हो आया, साँस की धौंकनी फूलने लगी। ठोर हौले-हौले पटपटा उठे—बाबा कपिलेश्वर ! तुम्हारा ही आसरा है; देखना हो बम्भोलेनाथ !!

१. बाहुपाश मे ले लिया।

कुछ देर बाद एकाएक उसे कुछ याद आया, बोला—अच्छा, अपने दोस्त के माँ-बाप की पहली पीढ़ियों के नाम लिख लाये हो ?

—हाँ, और अपनी भांजी का तो यह सब आपको मालूम होगा ही।

मंजूरी मुद्रा में दुर्गा ने माथा हिला दिया !

—यह लीजिए।

कमीज के पाकेट से निकालकर बादामी कागज की एक पुर्जी दिगम्बर ने दुर्गा की ओर बढ़ा दी। कागज के उस टुकड़े पर पेंसिल से लिखा हुआ पहला वाक्य था : वाचस्पति झा, पिता श्रीपति झा, गोत्र वत्स...

—दिगो, गोत्र तो बिल्कुल ठीक है। हमारी बहन का गोत्र काश्यप पड़ता है...इतना तो मुझे भी मालूम है कि वत्स और काश्यप गोत्रों में ब्याह होता है।

गोत्र का झमेला हटा तो दोनों की आधी फिकिर मिट गई !

—अपने वकील साहेब के बूढ़े पिताजी इन बातों के भारी जानकार हैं। पक्षाघात ने पस्त कर रखा है बेचारे को। यहीं अन्दर एक कोठरी में पड़े रहते हैं। जाकर मैं उन्हीं से क्यों न पूछ आऊँ !

—जाइए-जाइए, फौरन पता लग जायेगा।

दुर्गानन्दन अन्दर गये, दिगम्बर साँस टाँगकर परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

पाँच-एक मिनट हुए होंगे कि दुर्गानन्दन हुलसा हुआ चेहरा लेकर बाहर निकला।

दिगम्बर का भी मुखमण्डल उद्भासित हो उठा।

दोनों ने बेताबी से एक-दूसरे को बाँहों में कस लिया। किसी के मुँह से बोल नहीं निकल रहा था। खुशी की बाढ़ में उतराते हुए दो दिल उछल-उछलके एक-दूसरे को बधाइयाँ दे रहे थे।

थोड़ी देर बाद दोनों डेरे से निकले और उनके पैर उसी रास्ते पर बढ़ने लगे जिधर बंगाली हलवाई का 'सुभाष केबिन' था।

सत्तरह

दुर्गापूजा के दिन थे।

कहां से ढोल और पिपही की आवाज आ रही थी। बूलो अपने घर में भाई-भाभी के बड़े पलंग पर टांगें फैलाकर तिरछा लेटा था।

पिपही पर ढोलिया क्या गा रहा है?

जिज्ञासा में बूलो की आंखें बड़ी-बड़ी हो गईं। मन के करेंट को उसने कान की कटोरियों से छुआ दिया और सुनने लगा—

काली कमलीवाले तुझको लाऽऽखो पर्नाम!

लाऽऽऽखो पर्नाम!

लाखोऽऽऽखो पर्नाम!

तुझकोऽऽ

धत् तेरी! सौ साल का पुराना गीत गा रहा है साला। सीसम की टहनियों से सर्द ढोल पीट-पीटकर 'टापर-टुपुर' 'टापर-टुपुर' की आवाज निकालनेवाले इन बजवैयों से भला और आशा ही क्या रखते हो? 'पी-पी' करनेवाली अनगढ़ पिपही से भला और कौन-सी लय निकलेगी?

—अजी, लय तो इस पर भी अच्छी-से-अच्छी निकाली जा सकती है! गाने-बजाने का शऊर भी तो हो!

अपने गांव के दोनों ढोलियों को गालियां देता हुआ बूलो आखिर खुद ही सीटियां बजा-बजाकर गाने लगा

छुपके-छुपके बोल मैना!

···छुपके!

री चुपके!

ओ चुपके!

तू चुपके!

री मैना, तू चुपके-चुपके बोऽल!

सीटियां छूट गई तो सिसकारी शुरू हुई—अब बूलो सिसकारियों से अपनी मैना को चुप करा रहा था···आंखें मूंदकर समझा रहा था, उंगली उठा-उठाकर।

बिल्ली की तरह पैर मारकर बिसेसरी अन्दर आई और आहिस्ते

से अपनी हथेलियाँ बूलो की मुँदी पलकों पर डाल दीं···

तोता चुप हो गया।

मैना दम साधे हुए थी।

बूलो के हाथ आगन्तुक की कलाइयाँ टटोल रहे थे।

—भाभी ?

मुलायम हथेलियाँ, पतली-पतली कलाइयाँ, रस्सी की तरह के मड़ोरदार कंगन···लाख की बूटेदार चूड़ियाँ, चार-चार···नही, यह भाभी तो नही हो सकती !

और सब ठीक, चूड़ियाँ कांच की कहाँ गईं ?

तो फिर कौन होगी यह ?

बूलो भारी असमंजस में पड़ गया।

क्या बढ़िया मौजी मूड में बेचारा अपनी मैना से निबट रहा था, एकाएक यह कौन आ गई ? क्यों आ गई ?

नही रहा गया, आखिर खिलखिला पड़ी बिसेसरी भी।

—बीसो !

बूलो चीख उठा।

—अब क्यों नही पहचानोगे ?

हथेलियाँ हटा ली थी बिसेसरी ने। बूलो भी उठ बैठा, पराजय की हल्की-सी भावना आँखो को भली-भाँति चमकने नही दे रही थी।

इतने मे किसी काम से भाभी भी घर के अन्दर आ गई।

—यह चुप्पी किसलिए ?

भाभी के इस कौतूहल का समाधान देवर की ओर से होता। सो नही हुआ तो बिसेसरी मुस्कुराने लगी और बोली—मैना को चुप करा रहे थे बूलो, मैं आई तो निगोड़ी अपनी चुप्पी इन पर लादकर खुद फुर्र से उड़ गई !

इस पर तीनो हँस पड़े।

छिक्के पर छोटी-सी हँड़िया टँग रही थी कोने मे। भाभी ने उचककर उसमें से लाल मिर्चें निकाल ली और उस घर से बाहर निकल गई।

···इस बार मिर्जापुर (दरभंगा) से दुर्गा आई है, दस रुपये लगे हैं। प्रतिमा बड़ी अच्छी है। तुम नहीं गये हो, मैं तो देख आई हूँ··· सिंहवाहिनी की मूर्ति है···दस बाँहोंवाली !

बिसेसरी एक साँस में इतना कुछ बोल गई तो बूलो माथे पर दोनों तर्जनियाँ उठाकर सींगों की मुद्रा बनाकर पूछ बैठा—और महिषासुर कैसा है बीसो ?

होंठ और ठुड्डी बिचकाकर वह बोली—घड तक पाड़ा[1], गर्दन से लेकर माथा तक दानो[2]···और कैसा रहेगा ? उसके बारे में क्या पूछना !

—मुझको तो महिषासुर देखने में बड़ा ही अच्छा लगता है बीसो !

—उँह ! मुझे तो यह कभी नहीं सुहाया !

—अच्छा, कितनी बेहरी[3] उठी होगी इस बार ?

—जानो तुम लोग !

—क्यों बीसो ?

—यह सब पता रखना मर्दों का काम है ।

बूलो तनिक चुप हो गया। फिर बोला—कई ऐसे घर हैं जहाँ के मर्द हमेशा परदेश रहते हैं या मर गये हैं, वहाँ भीतर-बाहर के सारे काम औरतें ही सँभालती हैं। सो यह कैसे होता है ?

बिसेसरी को हंसी आ गई। चतुर बुजुर्ग की तरह माथा हिलाने लगी। कहा—ठगो मत मुझको बूलो ! सब समझती हूँ मैं···

आगे की बात सुनने की उत्सुकता से बूलो की आँख के दोनों खुले कोए दुगने फैल गये। पसरी हुई उसकी वह निगाह बिसेसरी के चेहरे को मानो पी रही थी।

···सब समझती हूँ मैं ! सोराज हुआ होगा डिल्ली और पटना में। यहाँ जो ग्राम-सरकार कायम हुई है, उसके एगारह ठो[4] मेम्बर हैं। जनानी एक्को गो[5] है बूलो ?

१. भैंसा। २. दानव। ३. चन्दा। ४-५ ठो, गो—पूर्वी हिन्दी के कथोपकथन में सख्या के साथ 'ठो' और 'गो' अक्सर आते हैं; यथा : दो ठो ग्राम, तीन गो आदमी।

दो-एक बार बुदुर के मुँह से बिसेसरी यह भी सुन चुकी थी कि मीम-तालचर के पास जो चार कट्ठा धानवाला खेत है, उसमें अबके जाने कैसे इतनी मछलियाँ आ गई हैं। चर¹ के उस ओर दुसाधों और मुसहरों की एक बस्ती है मुसाईपट्टी। वहाँवाले रात को आकर मछलियाँ मार ले जाते हैं•••कौन रखवाली करे इन मछलियों की !

कुछ हो, माहे मामा ने जरूर बढ़ा-चढ़ाकर कहा होगा !

खक्खक्खखा ऽ ऽ ऽ ऽ खा खखा ऽ ऽ :•••

गला साफ करने की यह बूलो की आवाज थी।

बिसेसरी चकुआई—हैं कहाँ यह ?

भाभी ने हँसकर कहा—खानदान ही यह हनुमानजी का ठहरा ! वह देखो, अमरूद की डाल पर लंगूर बैठा है !

नाक के पूड़े, होठ के कोर और ठुड्डीवाला गढ़ा—सबको सिकोड़कर मुस्कान को दबा लेने की चेष्टा की बिसेसरी ने; कि उधर बूलो अमरूद की डाल पर से कूदा, धम्म !

—लो, मैं कहती थी न !

भाभी खिलखिला उठी, बिसेसरी ने खुलकर साथ दिया।

भर फाँफड़² अमरूद थे। बूलो ने बरामदे पर उझल³ दिया। एक बड़ा-सा उठाकर उस पर वह सामनेवाले चार-चार दाँत गड़ा चुका तो पलकों के इशारे बिसेसरी पर पड़े—लो, तुम भी अमरूद खाओ !

एक पीला-सा हम्मक अमरूद उसने हाथ बढ़ाकर उठा लिया। धीरे-धीरे खाने लगी।

पहला अमरूद खा चुका तो सहज लहजे में बोला बूलो—भाभी, दिगो ननिहाल से आ गए हैं•••

जिज्ञासा की अधिकता के कारण भाभी ने मुँह बा दिया।

आधा खाया हुआ अमरूद, आधी उठी हुई हथेली•••बिसेसरी का स्तम्भित शरीर किसी वस्तुवादी मूर्तिकार के शिल्प का सुन्दर नमूना बनकर रह गया।

१. बरसाती झील। २. मर्दाना धोती का आँचल। ३. डाल दिया, धर दिया।

अब आगे बूलो के मुँह से क्या निकलेगा ?

भाभी का दिल धड़क रहा था।

बिसेसरी काठ की तरह निश्चेष्ट हो रही थी।

दूसरे अमरूद पर हाथ डालते हुए बूलो बोला—भारी काम कर आये हैं दिगो। सब ठीक हो गया। अगहन सुदी दशमी के दिन लगन तक ठीक कर लिया गया···दुर्गा चाचा की राय से सबकुछ हुआ है···

हऽ!

भाभी ने फक् से निसाँस छोड़ी।

फूल-सा हल्का माथा लेकर बिसेसरी वहाँ से उठी और आँगन से बाहर निकल गई।

अट्ठारह

दुर्गानन्दन दुर्गापूजा की छुट्टी मे चार रोज के लिए घर आया था।

माँ और बहन से उसने सारी बातें बता दी थीं। दोनों खुश हुई और आतुर होकर भगवती दुर्गा से प्रार्थना की—जल्दी से जल्दी पार-घाट लगाओ मइया !

समस्तीपुर जाकर दुर्गा बच्चन से भी स्वस्ति ले आया। भला, इसमें असहमत होने की क्या बात थी ? हाँ, अन्त मे बच्चन ने कहा—बाबूजी को सूचित कर देना क्या बुरा होगा ?

—बुरा तो नही होगा, मगर अड़चन जरूर पड सकती है फिर !

—तो, रहने दो।

बस···

दिवाली के दिन दिगम्बर और दुर्गानन्दन पदुमपुरा पहुँचे। वाचस्पति को पहले ही खबर कर दी गई थी, वह घर पर ही मिला।

एक मित्र की तरह खुले दिल से उसने दुर्गानन्दन का स्वागत किया। दोनों देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

वाचस्पति का वर्ताव दुर्गानन्दन को बडा ही मोहक लग रहा था। बाचो ने खुद ही वह बात छेड़ दी—आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे मे दिगम्बर से मेरी काफी

चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा···

—तभी दौड़े आये हैं ! जो समूचे देश की दुर्दशा पर दुखी रहता हो और देश की भलाई के लिए खुद फकीरी भेस धारण किये हुए हो, उससे भला किसका क्या छिपा रहेगा और कब तक ?

वाचस्पति ने कहा—व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। है न ?

दबी हुई लिबलिबी टोन में दुर्गानन्दन ने कहा—जी, बिल्कुल दुरुस्त है आपका कहनाम[1] !

खादी की धोती, सफेद-पीली-भूरी धारियोंवाली हॉफ कमीज··· ऊपर सुराहीनुमा गर्दन पर गोल और मझोली आकृति का मस्तक। सूरत गेहुँआ, आँखें साफ और साधारण ढङ्ग की। नाक-कान-कपार भी इसी अनुपात में पड़ते थे। बाएँ पैर पर घाव का गहरा निशान था। दोनों पैरों की दसों उँगलियों के बढे हुए नाखून तूफानी जीवन की अस्तव्यस्तता के सबूत थे।

दुर्गानन्दन देर तक वाचस्पति की शकल-सूरत को देखता रहा।

क्या उमर होगी इनकी ?

दिगो ने एकइस बतलाया था, बाइस होगी

इससे अधिक तो एकदम नहीं। दिगम्बर की बीस

फिर तो हद से हद बाइस वर्ष के होंगे यह

कि इतने मे अन्दर से घी में तले हुए मख।न।

गये—फुलही तश्तरी मे। लानेवाली थी आठ-

दूसरे हाथ में वह पानी ले आई थी, अपखोरा[2]

—नाश्ता कीजिए !

—जी, इसकी मगर क्या जरूरत थी ?

वाचस्पति को दुर्गानन्दन की तकल्लुफी

वह कुछ बोला नही।

१ कथन, कहना। २. काँसे की पुराने कि[illegible]

अब दिगम्बर उसी आँगन से बाहर निकला। बैंठके मे आकर बोला—वाचस्पति, जाओ, तुम भी नाश्ता कर आओ !

—और तुम ?

—मुझे तुम्हारी मां ने यों थोडे फुर्सत दी है ?

वाचस्पति आँगन की ओर गये।

दुर्गानन्दन खूब प्रसन्न थे। वाचस्पति की मां का क्या रुख है, यही जानना शेष था। सो बाबू दिगम्बर मल्लिक उस बेचारी का हृदय अच्छी तरह मालूम कर चुके थे। वह, उल्टे, दिगो को भर-भर सूप असिरबाद[1] दे रही थी। कह रही थी—तुमने मेरे लडके को कौन-सी जड़ी सुंघा दी है ? चार साल से मनाते-मनाते मैं हार गई थी और तुम चुटकी बजाते-बजाते उसे रिझा बैठे ! इसको कहते हैं जादू···

लड़की की शकल-सूरत और सील-सुभाव के बारे मे मास्टरनी दिगम्बर से पहले भी सुन चुकी थी, इस तरफ से वह बेफिक्र थी। दिगम्बर की बातों पर उसे पूरा विश्वास था।

एक बात उसने बार-बार पूछी थी—उमिर कितनी है लडकी की ?

चौदह।—दिगम्बर ने कहा था।

—मेरी कसम ?

—हाँ, मामी, अपनी कसम !

—अपनी नही, कहो, मेरी कसम !

—आपकी कसम !

तब जाकर वाचस्पति की मां को तसल्ली हुई और वह भर मुँह बोली थी—अगले साल बाबू तुम्हारा भी ब्याह होके रहेगा !

—धत् !

—गाँठ बाँध लो, न हो तो···

पीढ़ा छोडकर दिगम्बर उठ गया था, शरमा गया था न ! आँगन के बीचो-बीच थोड़ी देर टहलता रहा था तो मास्टरनी ने नाश्ता के लिए बुला लिया था···

१. आशीर्वाद।

चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा…

—तभी दौड़े आये हैं ! जो समूचे देश की दुर्दशा पर दुखी रहता हो और देश की भलाई के लिए खुद फकीरी भेस धारण किये हुए हो, उससे भला किसका क्या छिपा रहेगा और कब तक ?

वाचस्पति ने कहा—व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है। है न ?

दबी हुई लिबलिबी टोन में दुर्गानन्दन ने कहा—जी, बिल्कुल दुरुस्त है आपका कहनाम[1] !

खादी की धोती, सफेद-पीली-भूरी धारियोंवाली हॉफ कमीज… ऊपर सुराहीनुमा गर्दन पर गोल और मझोली आकृति का मस्तक। सूरत गेहुँआ, आँखें साफ और साधारण ढङ्ग की। नाक-कान-कपार भी इसी अनुपात में पड़ते थे। बाएँ पैर पर घाव का गहरा निशान था। दोनों पैरों की दसों उँगलियों के बढ़े हुए नाखून तूफानी जीवन की अस्तव्यस्तता के सबूत थे।

दुर्गानन्दन देर तक वाचस्पति की शक्ल-सूरत को देखता रहा।

क्या उमर होगी इनकी ?

दिगो ने एकइस बतलाया था, बाइस होगी जास्ती से जास्ती… इससे अधिक तो एकदम नहीं। दिगम्बर की बीस है कि एकइस ? एकइस !

फिर तो हद से हद बाइस वर्ष के होंगे यह बाबू साहेब…

कि इतने में अन्दर से घी में तले हुए मखाना दुर्गानन्दन के सामने आ गये—फुलही तश्तरी में। लानेवाली थी आठ-नौ साल की एक लड़की। दूसरे हाथ में वह पानी ले आई थी, अपखोरा[2] में भरकर।

—नाश्ता कीजिए !

—जी, इसकी मगर क्या जरूरत थी ?

वाचस्पति को दुर्गानन्दन की तकल्लुफी पर हँसी आ गई, लेकिन वह कुछ बोला नहीं।

१. कथन, कहना। २. कांसे की पुराने किस्म की गिलास, गाड़ीवाली।

अब दिगम्बर उसी आँगन से बाहर निकला। बैठके में आकर बोला—वाचस्पति, जाओ, तुम भी नाश्ता कर आओ!

—और तुम ?

—मुझे तुम्हारी माँ ने यों थोड़े फुर्सत दी है ?

वाचस्पति आँगन की ओर गये।

दुर्गानन्दन खूब प्रसन्न थे। वाचस्पति की माँ का क्या रुख है, यही जानना शेष था। सो बाबू दिगम्बर मल्लिक उस बेचारी का हृदय अच्छी तरह मालूम कर चुके थे। वह, उल्टे, दिगो को भर-भर सूप असिरबाद[1] दे रही थी। कह रही थी—तुमने मेरे लड़के को कौन-सी जड़ी सुंघा दी है ? चार साल से मनाते-मनाते मैं हार गई थी और तुम चुटकी बजाते-बजाते उसे रिझा बैठे ! इसको कहते हैं जादू···

लड़की की शकल-सूरत और सील-सुभाव के बारे में मास्टरनी दिगम्बर से पहले भी सुन चुकी थी, इस तरफ से वह बेफिक्र थी। दिगम्बर की बातों पर उसे पूरा विश्वास था।

एक बात उसने बार-बार पूछी थी—उमिर कितनी है लड़की की ?

चौदह।—दिगम्बर ने कहा था।

—मेरी कसम ?

—हाँ, मामी, अपनी कसम !

—अपनी नहीं, कहो, मेरी कसम !

—आपकी कसम !

तब जाकर वाचस्पति की माँ को तसल्ली हुई और वह भर मुँह बोली थी—अगले साल बाबू तुम्हारा भी ब्याह होके रहेगा !

—धत् !

—गाँठ बाँध लो, न हो तो···

पीढ़ा छोड़कर दिगम्बर उठ गया था, शरमा गया था न ! आँगन के बीचो-बीच थोड़ी देर टहलता रहा था तो मास्टरनी ने नाश्ता के लिए बुला लिया था···

१. आशीर्वाद।

दुर्गानन्दन नाश्ता करके पानी पी चुके तो दिगो बोला—समय नहीं है अब, साढ़े चार बजे की ट्रेन पकड़नी होगी और मधुबनी उतरकर रामनगर जाना होगा पंजियार[1] के पास—

जेब से छोटा सरौता और सुपारी निकालते हुए दुर्गानन्दन ने कहा—बातचीत हो गई, मैं बिल्कुल तैयार हूँ।

—ठहरिए, मधुबनी तक तो बाचो भी चलेगा।

—वाह ! वाह !! फिर क्या कहना !

थोड़ी देर बाद तीनों स्टेशन आये, दस-पन्द्रह मिनट बाद ट्रेन आई। भीड़-भाड़ मामूली थी। बैठने की जगह अच्छी तरह मिल गई।

बातचीत में वाचस्पति ने इस मुद्दे पर जोर दिया कि फिजूल का आडम्बर न तो कन्यापक्ष करे और न वरपक्ष ही। निहायत सादगी से सारे काम निबटाये जायँ···

दुर्गानन्दन को यह मानने में भला क्या आपत्ति होती ! बार-बार उसने भी कहा—जैसा आप चाहेंगे, बिल्कुल वैसा ही होगा···

मधुबनी स्टेशन पर तीनों उतर गये और चौराहे की पान की दूकान तक साथ गये।

चार-चार बीड़े पान सबने मुँह में डाले। दाम वाचस्पति देना चाहता था, परन्तु दुर्गानन्दन ने आग्रहपूर्वक उसे रोक दिया, खुद उसने कीमत चुकाई। टिकट लेते वक्त भी यही नाटक हुआ।

पान खाने के बाद दिगम्बर और दुर्गा उत्तरवाली सड़क पर आगे बढ़े, वाचस्पति ने अपना रुख पच्छिम की ओर किया।

उन्नीस

समय पर वर्षा होती गई हो, बाढ़ और सूखा का हमला न हुआ हो तो अगहनी फसल कतकी नहान के बाद ही खलिहानों में पहुँचने लगती है। पण्डिताइन ने सुमापंखी धान का हरियल चूड़ा कुटवाकर सँभाल

१. पञ्जीकार (मैथिल ब्राह्मणों को शादी-ब्याह की लिखित अनुमति देनेवाला रजिस्ट्रार)।

रखा—दस तामा याने कच्ची तौल से दो पसेरी।

कैसी भी सादगी से ब्याह होगा, दस सेर चूड़ा तो चाहिए ही। अगहन में शादी हो किसी के घर और अगता[1] धान का चूड़ा न जुटे !

साठी, कतकी और असिनी—ये धान पहले ही तैयार हो जाते हैं —अधिक तो नहीं, गौरी ने एक कोली[2] मे कतकी रोप रखी थी सो काम आई। नहीं तो, अधपकी फसल काटकर कौन किसी को धान देता है ?

जेठ में ब्याह नहीं हो पाया तो क्या अगहन की लगन भी खाली लौट जायेगी ?—गौरीनन्दन को लोग लाख कामचोर कहें, है मुदा भारी दूरन्देश ! उसी के पर्ताप से सूग्रापंखी धान का यह दस तामा चूड़ा जुटा पाई हूँ—पण्डिताइन बार-बार सोच रही थी और मन-ही-मन गौरी को अच्छा डाक्टर बनने का असिरबाद दे रही थी।

बात फैलने नहीं दी गई, दिगम्बर और दुर्गानन्दन की कड़ी हिदायत थी कि जब तक दूल्हा बस्ती मे आ नहीं ले तब तक होंठों का सिये रहना।

योजना यह थी कि लगन की निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही दिगम्बर वाचस्पति को अपने घर ले आयेगा। थोड़ी-बहुत फल-फलहारी, पान, मिठाई वगैरह सामग्री लाने की जिम्मेदारी टुनाई ने ली। पद्धति हाथ में थामकर पुरोहिताई का काम बच्चन के सुपुर्द; दो दिन का अवकाश लेकर वह ऐन मौके पर पहुँच जाएँगे। भाभी, माहे की माँ, मझली बहू, खंजन, पण्डिताइन और रामेसरी और सुबधा की माँ—बस, इससे अधिक औरतों का जमावड़ा नहीं होने दिया जाएगा। बड़ी और छोटी बहुएँ किसी तरह की नुक्ताचीनी नहीं कर पाएँगी—दिन को नहीं, रात के वक्त शादी होगी। हेहुआ और गोनउड़ा सेवा-टहल या मेहनत-मशक्कत के कामो के लिए मुस्तैद रहेंगे—बिसेसरी को तैयार रखने का भार रामेसरी पर।

फिर भी, दो-तीन दिन पहले ही मुखिया को भनक मिल गई। उसके जी में आया कि पण्डिताइन की बीमारी का एक्सप्रेस तार देकर खोंखा

१. और-और किस्म के धान से पहले ही तैयार हो जानेवाला; पहले का रोपा हुआ। २. निहायत छोटा खेत, बड़ी क्यारी।

पण्डित को क्यों न बुला लिया जाय ? दिगम्बर और दुर्गानन्दन की सारी होशियारी कोई आकर घुसाड़ दे तो क्या हर्ज है ? पर, नहीं—पण्डित तो बहुत ही बुड्ढा हो गया है, दो नहीं चार साल अधिक से अधिक और जियेगा। तो, इन छोकरों से जिन्दगी-भर का बैर मोल लेकर अपने को आखिर क्या हाथ आयेगा ? ठूंठ ठूंठ है, बिरवा बिरवा ही ठहरा। पुरानी पीढ़ी के उस खूसट का वस चले तो फिर बिसेसरी के लिए सत्तर साल का कोई मुर्दा आ जाय दूल्हा बनकर ! छी-छी-छी-छी !···माहे और दिगम्बर ने उस बुड्ढे को खदेड़कर बिल्कुल ठीक किया था—

अपने दालान पर अकेला ही बैठा था मुखिया, तख्तपोश पर। पीठ देवाल से टिकी हुई थी।

तिपहरिया का ढलता सूरज !

छाँह में बैठे रहने पर भी तन-मन को हेमन्ती बयार असर कहाँ रही थी ? नहीं अखरती थी कि ! तनिक भी नहीं।

मुखिया की पलकें पूरी खुली, निगाह का मगर थाह-पता नहीं था। मीठी चितवन, कपार पर तितलीनुमा टिकली, गीले सेंदुर की बारीक रेखा वाली सीथ—

यह कौन थी जो मुखिया के अन्तश्चक्षु पर हावी हो रही थी !

यह कौन थी जो मुखिया की समूची चेतना को प्रतिमा के अपने घेरे मे खीच लाई थी ?

यह कौन थी जो मुखिया को नयी पौध के प्रति अधिक-मे-अधिक सवेदनशील होने के लिए वाध्य कर रही थी ?

कान्ता थी यह, मुखिया की अपनी लड़की। अपने बाप की एकमात्र सन्तान—बेटा समझो तो यही और बेटी समझो तो यही ! पिछले ही वैसाख मे गौना हुआ था, आजकल ससुराल मे थी।

बिना कान्ता के, समूचा घर-आँगन मुखिया के लिए मसान था। मुश्किल से ये सात महीने कटे। माघ में आनेवाली थी। मुखिया को चिरौरी करनी पड़ी थी तब कहीं कान्ता के ससुरालवाले रुखसदी के लिए राजी हुए थे।

दामाद कलकत्ते में नौकरी कर रहा था, घड़ियों की किसी दूकान में

किरानी का काम। गौना कराके ले गया सो पन्द्रह रोज ही घर रहा। अब होली की छुट्टी में आनेवाला था।

तेइस-चौबीस साल की आयु, दुहरा बदन, बड़ी-बड़ी आँखोंवाला गोल-मटोल चेहरा, गेहुँआ सूरत ··काफी मेहनत के बाद ऐसा अच्छा दूल्हा हाथ लगा था—ससुराल में दस दिन-रात पति के साथ बिताकर कान्ता ने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट मे जो पोस्कार्ड भेजा था, उसका एक-एक शब्द मुखिया को याद आ रहा था इस वक्त।

आँखें तर हो आईं तो ध्यान में कान्ता का वही मुग्ध मुखमण्डल चिकनी मिट्टी के पीताभ प्रलेप से पुतकर बिसेसरी का मुखड़ा बन गया।

—तू कौन है ?

—मैं ? कान्ता हूँ मैं, वाह ? इतनी जल्दी भूल गये !

—नहीं, तू कान्ता नहीं हो सकती ! हर्गिज नहीं !!

—नहीं ? बाबा, मैं कान्ता ही हूँ···मगर—

—मगर ?

—मगर, मैं अब तक क्वाँरी हूँ ! दूल्हा होने को कोई राजी नहीं होता···तुम लोग एक बुड्ढे को ले आये थे, छोकरों ने उस अहमक को खदेड़ दिया। अब वह घूम-घूमकर समूची दुनिया में कहता फिर रहा है : मुखिया की बेटी की सीथ मे सेंदुर तो मैं भर आया, अब गौना हो, चाहे नहीं हो···जहाँ कहीं कोई मुझसे ब्याह करने को तैयार होता है, यह बुड्ढा जाकर उसे रोक देता है ! एक-दो नहीं, चार-चार आदमी बुड्ढे के बहकावे में आ चुके हैं। बाबा, मैं जिन्दगी-भर अनब्याही रहूँगी ?

मुखिया बुदबुदा उठा—नहीं-नहीं, बेटी, अबकी बड़ा अच्छा दूल्हा आ रहा है तेरे लिए ! तू भला क्वाँरी रहेगी ?···

उसने धोती के खूँट से आँखें पोंछ लीं। थोड़ी देर काठ-सा चेष्टा-हीन बैठा रहा, फिर लेट गया।

पलकें झिप गईं।

उधर खंजन—पाठक की भतीजी और बीसो की सहेली बड़ी चतुराई

से दूल्हा के बारे में तमाम बातें मालूम कर आई थी। कुछ तथ्य उसे दिगम्बर की अम्मा से हासिल हुआ था और बाकी बूलो की भाभी से।

नहाते समय जनाना घाट पर दोनों सहेलियाँ देर तक बैठने लगी—दाउर[1] की जगह मोटे काठ की एक गाँठ पड़ी थी, घुटने-भर पानी में बाँस के दो छोटे खूँटों के सहारे बैठाकर अचल-अडिग कर दी गई थी। भीगे कपड़ों की चोट खा-खाकर उसका सीना सपाट और चिकना हो गया था। सुख-दुख बतियाने का अनूठा मंच था वह औरतों के लिए।

ब्याह से पहले रोज की बात है :

खजन ने आँखें नचाकर कहा—ले, अब कितना उड़ेगी बीसो ?

जवाब में एक जोड़ी संजीदा निगाहें उसकी ओर उठी, उत्कण्ठा का आवेग दबाने में अच्छी सफलता हासिल कर ली थी उन्होंने।

खंजन तनिक मुस्कान उभार लाई अपने होठों के बाँध पर, फिर बिसेसरी की आँखों में झाँककर देखा—छन-भर देखती रह गई, तब जाकर बोली—तेरा वो हिरामन तोता अपने मजबूत डैनों पर तुझे लिये-लिये उड़ता फिरेगा···

—भग् !

—मै झूठ कहती हूँ ?

—च्छो: !

—फिर वही बात ?

बीसो के कान इस प्रकार की चुहलबाजी से अब तक बिल्कुल अनजान थे। उसका दिल बुरी तरह गुदगुदा उठा।

अपनी लाज को ज्यादा बेपर्द होने देना उसे जाने कैसा-कैसा लगा, सो, बिसेसरी अंजुरी-भर पानी खंजन के सिर पर उछालकर भर-छाती पानी मे कूद पड़ी—झपाक् !

पानी से माथा बाहर निकाला तो खंजन की खिलखिलाहट ने कानों में फिर मीठी घुमन पैदा कर दी···

कुछ बोलना नहीं चाहती थी बीसो ! न हँसना

१. दाह, काठ (कपड़ा धोने-पछोटने के लिए)।

मुस्कुराना। भर मुँह पानी था! पीठ फेरकर वह गर्दन और छाती मलने लगी।

पीठ पर छितरे लम्बे, काले बालों से पानी अब भी गिर रहा था—गर गर गर गर गर…

अपने बहनोई के मीठे गले से गुनगुनाया हुआ विद्यापति का एक पद खंजन को याद हो आया। वह रेघाकर[1] गाने लगी—

चिकुर गरए जल-धा ऽऽ रा ऽऽ!

मुख शशि-डर जनि रोग्रए अन्हा ऽऽ रा ऽऽ।[2]

बीसो ने उस पद का मतलब नहीं समझा। अलापते समय खंजन की मुद्रा और लय के क्रम ऐसे थे कि अश्लील-से, अपरिचित-से भावों की उत्कट गन्ध मालूम पड़ी बिसेसरी को; नाहक!

इतने में नानी खुद इसी ओर आती दिखाई दी बीसो को। फिर तो दोनों शराफत की पुतलियाँ बन गईं और उसी तरह चुपचाप पानी से बाहर आने लगी, जैसे चरवाहे की उठी हुई लाठी देखकर भैंसें।

बीस

ब्याह की सभी विधियाँ बिना किसी अड़चन के पूरी हो गईं।

गाँव के बडे-बूढ़े वर-वधू के माथे पर दूब-अच्छत छीटकर आशीर्वाद दे गये थे—फतूरी मुखिया, परमानन्द पाठक, जोतखीजी, श्रीनारायण प्रतिहस्त, जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कण्ठ, स्कूल के दो मास्टर…

तिरहुतिया ब्राह्मणों के रिवाज के मुताबिक, शादी के बाद की चौथी रात सुहागरात थी। आज ही दूल्हा-दुलहिन ने नमकीन खाना खाया था, आज ही वे साथ की संगत पानेवाले थे।

ब्याह के बाद भी तीन दिनों तक बिसेसरी मानो क्वाँरी ही रही, साड़ी का पल्ला माथे पर तो आज आकर पड़ा था!…

१. तरन्नुम में आकर, लय में आकर। २. बालों से पानी की धारा गिर रही है। मुखचन्द्र के भय से मानो अन्धकार रो रहा है!

से दूल्हा के बारे में तमाम बातें मालूम कर आई थी। कुछ तथ्य उसे दिगम्बर की अम्मा से हासिल हुआ था और बाकी बूलो की भाभी से।

नहाते समय जनाना घाट पर दोनों सहेलियाँ देर तक बैठने लगी—दाउर[1] की जगह मोटे काठ की एक गाँठ पड़ी थी, घुटने-भर पानी में बाँस के दो छोटे खूंटों के सहारे बैठाकर अचल-अडिग कर दी गई थी। भीगे कपड़ों की चोट खा-खाकर उसका सीना सपाट और चिकना हो गया था। सुख-दुख बतियाने का अनूठा मंच था वह औरतों के लिए।

ब्याह से पहले रोज की बात है :

खंजन ने आँखें नचाकर कहा—ले, अब कितना उड़ेगी बीसो ?

जवाब में एक जोड़ी संजीदा निगाहें उसकी ओर उठीं, उत्कण्ठा का आवेग दबाने में अच्छी सफलता हासिल कर ली थी उन्होंने।

खंजन तनिक मुस्कान उभार लाई अपने होंठों के बाँध पर, फिर बिसेसरी की आँखों में झाँककर देखा—छन-भर देखती रह गई, तब जाकर बोली—तेरा वो हिरामन तोता अपने मजबूत डैनों पर तुझे लिये-लिये उड़ता फिरेगा···

—भग् !

—मैं झूठ कहती हूँ ?

—च्छो' !

—फिर वही बात ?

बीसो के कान इस प्रकार की चुहलबाजी से अब तक बिलकुल अनजान थे। उसका दिल बुरी तरह गुदगुदा उठा।

अपनी लाज को ज्यादा बेपर्द होने देना उसे जाने कैसा-कैसा लगा, सो, बिसेसरी अंजुरी-भर पानी खंजन के सिर पर उछालकर भर-छाती पानी में कूद पड़ी—झपाक् !

पानी से माथा बाहर निकाला तो खंजन की खिलखिलाहट ने उसके कानों में फिर मीठी झुनझुन पैदा कर दी···

कुछ बोलना नहीं चाहती थी बीसो ! न हँसना चाहती थी, न

१. दारु, काठ (कपड़ा धोने-पछीटने के लिए)।

मुस्कुराना। भर मुँह पानी था! पीठ फेरकर वह गर्दन और छाती मलने लगी।

पीठ पर छितरे लम्बे, काले बालों से पानी अब भी गिर रहा था—गर गर गर गर गर···

अपने बहनोई के मीठे गले से गुनगुनाया हुआ विद्यापति का एक पद खंजन को याद हो आया। वह रेघाकर[1] गाने लगी—

चिकुर गरए जल-धा ऽऽ रा ऽऽ!

मुख शशि-डर जनि रोअए अन्हा ऽऽ रा ऽऽ![2]

बीसो ने उस पद का मतलब नहीं समझा। अलापते समय खंजन की मुद्रा और लय के क्रम ऐसे थे कि अश्लील-से, अपरिचित-से भावों की उत्कट गन्ध मालूम पड़ी बिसेसरी को; नाहक!

इतने में नानी खुद इसी ओर आती दिखाई दी बीसो को। फिर तो दोनों शराफत की पुतलियाँ बन गईं और उसी तरह चुपचाप पानी से बाहर आने लगी, जैसे चरवाहे की उठी हुई लाठी देखकर भैंसें।

बीस

ब्याह की सभी विधियाँ बिना किसी अड़चन के पूरी हो गईं।

गाँव के बड़े-बूढ़े वर-वधू के माथे पर दूब-अच्छत छींटकर आशीर्वाद दे गये थे—फतूरी मुखिया, परमानन्द पाठक, जोतखीजी, श्रीनारायण प्रतिहस्त, जयनारायण मल्लिक, मधुसूदन कण्ठ, स्कूल के दो मास्टर···

तिरहुतिया ब्राह्मणों के रिवाज के मुताबिक, शादी के बाद की चौथी रात सुहागरात थी। आज ही दूल्हा-दुलहिन ने नमकीन खाना खाया था, आज ही वे साथ की संगत पानेवाले थे।

ब्याह के बाद भी तीन दिनों तक बिसेसरी मानो क्वाँरी ही रही, साड़ी का पल्ला माथे पर तो आज आकर पड़ा था!···

१. तरन्नुम में आकर, लय में आकर। २. बालों से पानी की धारा गिर रही है। मुखचन्द्र के भय से मानो अन्धकार रो रहा है!

मझली मामी ने बिसेसरी को दूल्हेवाले घर का दरवाजा टपाकर भीतर पहुँचा दिया, बाहर से किवाड़ उढ़का दिये और हट गई।

दूल्हे की पलकें तनिक झिप आई थीं, सो पायल की रुनझुन और गहनों की खनखनाहट से चंचल हो उठीं।

अगहन का उजेला पाख।

रात डेढ़ पहर से ऊपर नहीं हुई होगी।

बाहर साफ और सुहावनी अँजोरिया[1] का राज था।

जंगले की किवाड़ियाँ डेवढ़ लगी थीं, उनके फाँकों में से होकर हेमन्ती ओस की जूहिया नमी भीतर पहुँच रही थी—मिठास-भरी सर्दवाला तरुण समीर इस काम में उसकी मदद कर रहा था।

तख्तपोश पर आज विस्तरा बाकायदा था।

नीचे काँसे की पीकदान थी।

सूरजछापवाले मटिया तेल से भरी नये मॉडल की लालटेन मद्धिम करके एक ओर रखी थी···

दूल्हा आहिस्ते से उठ बैठा, लेटा हुआ था न!

देखा, धानी रंग की रेशमी साड़ी में अपने को पूरी तरह ढँके हुए दुलहिन दरवाजे के करीब खड़ी है। घूँघट का झुका छोर बता रहा था कि वह माथा झुकाये खड़ी है।

दूल्हा बिस्तरे से नीचे उतरा, खड़ाऊँ नहीं डाली पैर में। जाकर पहले किवाड़ों का बिलइया लगा दिया, फिर बाँहों से थामकर दुलहिन को तख्तपोश के निकट ले आया। उसके कन्धे दबाकर फुसफुसाया—बैठ जाओ!

वह बैठ गई। तब दूल्हा भी तनिक हटकर बैठा।

—अब इसकी क्या जरूरत है?

घूँघट हटा दी गई तो दुलहिन ने अपनी नजरों को चुरा लिया, होंठों को जब्त किये रही।

—आखिर कब तक?

१ चाँदनी।

कुछ जवाब नहीं, इशारा तक नहीं ! वह प्रतिमा की तरह बैठी रही। पैर तख्तपोश से नीचे लटक रहे थे।

—अच्छा, आओ, दो बाजी ताश खेल लें। सुना है, खूब खेलती हो।

—ईह ! ताश है कहाँ ?

—है कि !

दूल्हे ने लाख कोशिश की मगर वह अपनी मुस्कान को पचा नही पाया, उसे मुस्कुराते देखकर दुलहिन शरमा गई कि बिना 'मुँह-बजावन'[1] के ही वह बोल पड़ी !

सिरहाने से ताश निकालकर दूल्हा पाल्थी लगाकर बैठा।

—आओ, आमने-सामने बैठो ! मैं पत्ती बाँटता हूँ, तुम रंग बोलो !

जादूगर की छोकरी-जैसी दुलहिन सामने हो गई !

आधी पत्तियाँ ही बँटी थी कि दूल्हे को कुछ याद आया। ताश छोडकर वह तख्तपोश के नीचे झुका। अपनी लीडराना अटैची खोलकर कोई चीज निकाली। फिर आमने-सामने होकर उसने दुलहिन का दाहिना हाथ माँगा कि देखेगा।

हथेली फैली तो उस पर दूल्हे ने सोने की एक अँगूठी धर दी…

बिसेसरी ने उठाकर गौर से देखा—'वाचस्पति' अंकित था नीले हरफों में मुंदरी के मत्थे पर…मुस्कुराकर बोली—यही नाम है ?

हाँ, यही नाम है मेरा !—दुलहिन के गाल पर मीठी चपत लगाकर दूल्हा हँसा तो दुलहिन तनिक झेंप गई।

—लाओ, पहना दूँ ! मगर अपना नाम बताओ…

—बिसेसरी !

लाज और संकोच से सम्पुटित मृदु-मन्द स्वर वाचस्पति के कानों को शीतल एवं सुखस्पर्श लगा।

---

१. "बिना कुछ लिये मुँह से एक शब्द भी न निकालना"—दुलहिन को यह शिक्षा दिया जाता है; दूल्हा कोई वस्तु (या नगद) 'बोलावन' के तौर पर देता है, तभी वह मुँह खोलती है।

—घर के लोग क्या कहते हैं ?

—बीसो।

—माँ क्या कहती है ?

—कभी बुचिया, कभी बुच्चनि···

वाचस्पति बिसेसरी के दाहिने हाथ की अनामिका उँगली में अँगूठी डालने की कोशिश कर रहा था।

गोरी, छरहरी···नुकीली नाक, फाँक-सी आँखें, ढले-उभरे गाल, चौड़ा कपार, काले-लम्बे बालों का भारी जूडा···और ठुड्डी व होंठ दोनों तो साँचा पर से अभी-अभी निकले हैं···उम्र पन्द्रह होगी या सोलह ?

कैसी खूबसूरत जीवन-संगिनी मिली है उसे !

अँगूठी आखिर आ गई उस अँगुली में—बीसो के काजलवाले वे नैन लालटेन की मद्धिम रोशनी में भी एक अनूठी चमक से जगमगा उठे।

लेकिन मैं तुम्हें बिस्सी कहा करूँगा ! —वाचस्पति ने कहा तो बिसेसरी की आँखों में खुशी की झलक उफनने लगी···

नागार्जुन ..
१९११ में पैदा हुए थे
(ग्राम : तरौनी; जिला : दरभंगा; विहार)
पूरा नाम . वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री'...
१४ उपन्यास; १०काव्य संकलन; १५ अनुवाद–
विभिन्न भाषाओं से (गद्य-पद्य दोनों में) ..
स्वभाव से घुमक्कड़, आवेगशील और
अ-स्थिर।
सर्वाधिक प्रिय भाषा : संस्कृत